पंचभीष्मकव्रतकथा भाषाटीकासहिता

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

अथ

पंचभीष्मकव्रतकथा भाषाटीकासहिता

प्रारभ्यते

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : नवंबर २०१९, संवत् २०७६

मूल्य : १५० रुपये मात्र ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ पंचभीष्मकव्रतकथा भाषाटीकाप्रारंभ । दोहा—नन्दनंदन व्रजचन्दको, वंदन कर कर जोरि ॥ पंचभीष्म भाषा कथा, नंदलाल कहे जोरि ॥ १ ॥ प्रथम हम उन परमानंदस्वरूप माधव (श्रीकृष्ण) भगवान्को प्रणाम करते हैं कि जिनकी कृपा गूँगेको वाणीसे भूषित करदेती है और पाँगलेको पर्वत

ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ पंचभीष्मकव्रतकथा प्रारभ्यते॥ मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वंदे परमानंदमाधवम् ॥ १ ॥ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः । ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ २ ॥

लंघा देती है ॥ १ ॥ ब्रह्मा वरुण इंद्र और वायु दिव्यस्तोत्रों करके जिनकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गानेवाले अंग और पद क्रम उदनिषदों सहित वेदों करके जिनका गान करते हैं, योगिजन ध्यानमें मनको स्थिर करके जिनका दर्शन करते हैं और सुर असुरगण जिनके अंतको नहीं जानसकते हैं ऐसे उन देव (श्रीकृष्ण) को हम नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥

सूतजी बोले—हे शौनक ! मैं एक पुरातन धर्म कहता हूँ सुनो; कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिसे लेकर पंच भीष्म नाम व्रत कहा है ॥ १ ॥ एक समयमें इसी व्रतको पद्मजात (ब्रह्मा) भगवान् श्रीकृष्णसे पूछते हुए ब्रह्मा बोले—कि हे भगवन् ! मेरे ऊपर दया करके पंचभीष्म व्रतका फल मुझसे कहो क्योंकि जिससे आप संपूर्णोंमें

सूत उवाच ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षे च शृणु धर्मं पुरातनम् । एकादशीं समारभ्य विज्ञेयं पंचभीष्मकम् ॥ १ ॥ एकदा पद्मजातस्तु श्रीकृष्णं परिपृष्टवान् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतद्व्रतफलं ब्रूहि ममोपरि दयां कुरु ॥ २ ॥ सर्वेषु तूत्तमस्त्वं हि सर्वेषां प्रतिपालकः । केन चादौ पुरा चीर्णमेतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥ अधिकं सर्वव्रतेषु यज्ञानां फलदायकम् । सर्वेषु तीर्थेष्वधिकं श्रुतमेतद्दयानिधे ॥ ४ ॥

उत्तम हो सबके प्रतिपालक हो इसलिये आपके विना दूसरा कौन कहेगा । हे भगवन् ! प्रथम तो यह कहो कि पहले आदिमें यह व्रत किसने किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! हे दयानिधे ! मैंने सुना है कि यह व्रत अन्य संपूर्ण व्रतोंमें अधिक अर्थात् उत्तम है और यज्ञोंके फलको देनेवाला है और इसमें किये स्नान आदि संपूर्ण तीर्थोंके स्नान आदि फलोंको देनेवाला है ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण बोले-हे मुनिश्रेष्ठ ! यह व्रत बालचित्तवालोंको और बलहीनोंको निरंतर दुष्कर है अर्थात् इनसे सुख पूर्वक नहीं होसकता है इसलिये जो कोई इस व्रतको करता है वह संपूर्णव्रतोंके फलोंको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले-हे मुनिश्रेष्ठ (शौनक) ! जगद्गुरु ब्रह्माको श्रीकृष्ण भगवान् कहते भये कि हे ब्रह्मन् ! कार्त्तिकशुक्ल

श्रीकृष्ण उवाच ॥ दुष्करं सत्त्वहीनस्य सांतत्यं बालचेतसाम् । यः करोति मुनिश्रेष्ठ तेन सर्वफलं भवेत् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ श्रीकृष्णः कथयामास ब्रह्माणं च जगद्गुरुम् । एकादश्यां समारभ्य व्रतं पंचदिनात्मकम् ॥ ६ ॥ भीष्मेणैतत्कृतं पूर्वं चीर्णं युधिष्ठिरेण च । संवत्सरे तु यः कुर्यादेकादश्यां व्रतं नरः ॥ ७ ॥ यत्पुण्यं प्राप्यते मर्त्यैस्तत्पुण्यं भीष्मपंचके । भीष्मस्तु कथयामास धर्मविद्भीष्मपंचकम् ॥ ८ ॥

एकादशी (११) से प्रारंभ करके यह पांच दिनका पंचभीष्म नाम करके व्रत है ॥ ६ ॥ और यह व्रत पहले भीष्मजीने और राजा युधिष्ठिरने किया है । हे शौनक ! एक संवत्सर एकादशी (११) के व्रत करनेसे मनुष्य जिस पुण्यको प्राप्त होता है उसी पुण्यको पंचभीष्मकव्रत करनेसे प्राप्त होता है । धर्मके जाननेवाले भीष्मजीने यह पांच दिनका व्रत राजा युधिष्ठिरसे कहा है इसलिये इसका पंचभीष्म नाम हुआ है ॥ ७ ॥ ८ ॥ भीष्मजी बोले-हे राजन् ! युधिष्ठिर ! यह व्रत बडा पवित्र और गुप्त है इसलिये सबके आगे प्रकाशित न करना केवल अनुरक्त शिष्यके आगेही प्रकाशित करना ॥ ९ ॥ जो विशुद्ध आत्मावाला इस व्रतको करता है वह ऐसी निर्मलताको प्राप्त

भीष्म उवाच ॥ राजन्नेतद्व्रतं गुह्यं गोप्यं नैव प्रकाशयेत् । शिष्याय चानुरक्ताय कथनीयं व्रतं त्विदम् ॥ ९ ॥ एतद्व्रतप्रभावेण यमस्तं नेक्षितुं क्षमः । यः करोति विशुद्धात्मा सोऽपि निर्मलतां लभेत् ॥ १० ॥ व्यतीपाते ह्यमायां च चंद्रसूर्योपरागके । यत्पुण्यं प्राप्यते मर्त्यैस्तत्पुण्यं भीष्मपंचके ॥ ११ ॥ वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगे सदा । अंबरीषादिभिश्चैव चीर्णं त्रेतायुगे सदा ॥ १२ ॥

होजाता है कि धर्मराज उसके देखनेको भी समर्थ नहीं होसकता है ॥ १० ॥ व्यतीपात, अमावास्या और चंद्र सूर्य ग्रहण इनमें दान पुण्य आदि करनेसे मनुष्य जिस फलको प्राप्त होता है उसी फलको पंचभीष्मक व्रत करनेसे प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ सत्ययुगमें तो यह व्रत वसिष्ठ भृगु गर्ग आदि मुनियोंने सदा किया है और त्रेतायुगमें

अंबरीष आदि राजाओंने सदा किया है ॥ १२ ॥ और कलियुगमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्री और शूद्र ये संपूर्ण काम अर्थकी सिद्धिके लिये सदा व्रत करेंगे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, जप होममें परायण हुए ब्रह्मचर्यसे व्रत करे और शूद्र मंत्रवर्जित व्रत करे ॥ १४ ॥ व्रत करनेवाला मनुष्य पृथ्वीमें शयन करे और घृतका

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स्त्रियः शूद्रास्तथैव च । कलौ सर्वे करिष्यंति सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १३ ॥ ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण जपहोमपरायणाः । क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः शूद्रो मंत्रविवर्जितः ॥ १४ ॥ धरित्र्यां शयनं कुर्याद् घृतदीपमखंडकम् । उपानहौ परित्यज्य नववस्त्रं तु धारयेत् ॥ १५ ॥ अथ कथा ॥ भीष्म उवाच ॥ पुरा कृतयुगे ह्यासीदंबरीषो नृपः सुधीः । ब्रह्माण्डपुरवासी च प्रजापालनतत्परः ॥ १६ ॥

अखंड दीपक रक्खे और जूतियोंका त्याग करके नवीन वस्त्र धारण करे ॥ १५ ॥ अथ कथा ॥ भीष्मजी बोले–पहले सत्ययुगमें ब्रह्मांडपुरमें वसनेवाला एक अंबरीष नामका राजा हुआ । यह राजा बडा बुद्धिमान् और प्रजापालनमें तत्पर हुआ ॥ १६ ॥ पुत्रके तुल्य प्रजाकी पालना करनेसे प्रजा उसको पिता मानती थी और राजाओंमें शिरोमणि वह राजा ब्राह्मणोंका भक्त संपूर्ण धर्मोंको जाननेवाला था ॥ १७ ॥ वह राजा कुमार्गमें चलनेवालोंको दंड देनेवाला और समचित्त साधुओंका सेवक था ॥ १८ ॥ एक समयमें उसके राजकुमारने दूसरेके

प्रजा तं पितरं मन्ये पुत्रवत्पालयन् प्रजाम् । ब्रह्मण्यः सर्वधर्मज्ञो नृपाणां च शिरोमणिः ॥ १७ ॥ स राजा दंडधर्ता च नृणां तूत्पथगामिनाम् । साधूनां समचित्तानां सेवको ह्यभवन्नृपः ॥ १८ ॥ एकदा तत्सुतश्चौर्यं कृतवान् परवेश्मनि । तेन चौर्यप्रभावेण पापभागी नृपोऽभवत् ॥ १९ ॥ एकदा यज्ञकार्यार्थं ब्राह्मणांस्तु न्यमंत्रयत् । ब्राह्मणास्तत्र आगत्य राजानं चेदमब्रुवन् ॥ २० ॥

घरमें चोरी की उस चोरीके प्रभावसे राजा पापभागी होगया ॥ १९ ॥ यह अंबरीष राजा एक समयमें यज्ञकार्यके लिये जब ब्राह्मणोंको निमंत्रण किया तब ब्राह्मण आकर राजाको यह वचन कहने लगे ॥ २० ॥

ब्राह्मण बोले-हे राजन् ! किस कारण आपने ब्राह्मणोंको निमंत्रण किया है ? ऐसे पूछा हुआ राजा वचन कहने लगा ॥ २१ ॥ राजा बोला-हे द्विजो ! मैं आपके प्रसादसे अग्निहोत्र करनेकी इच्छा करता हूं क्योंकि मेरे घरमें होनेवाले बहुत विघ्नोंको अग्निहोत्र ही शांत करता है ॥२२॥ ब्राह्मण लोग राजाका ऐसा वचन सुनकर राजाको दीक्षा

ब्राह्मणा ऊचुः ॥ कस्माद्धेतोस्त्वया राजन् कृतं विप्रनिमंत्रणम् । एवं विप्रैश्च पृष्टः सन् स राजा वक्तुमुद्यतः ॥२१॥ राजोवाच ॥ अग्निहोत्रं करिष्यामि द्विजा युष्मत्प्रसादतः । मम गेहे बहून् विघ्नानग्निहोत्रं प्रशाम्यति ॥ २२ ॥ तदा विप्रास्तु राजानं दीक्षा मास्थापयंस्ततः । अग्निं प्रज्वालयामासुर्नोत्थितो हव्यभोजनः ॥ २३ ॥ तदा चिन्ता समुत्पन्ना विप्राणां नृपमेव च । विप्रास्तु कथयामासुर्धिक् ते जन्म नृपात्मज ॥ २४ ॥

देते हुए और अग्निको प्रज्वलित करने लगे । परंतु अग्निदेव कुंडमें प्रकट नहीं हुए ॥२३॥ उस कालमें अग्निदेव नहीं प्रकट होनेके कारण ब्राह्मणोंको बडी चिंता हुई और ब्राह्मण कहने लगे कि हे नृपपुत्र ! तेरे जन्मको धिक्कार है ॥ २४ ॥ राजाको इस प्रकार कहकर वे संपूर्ण ब्राह्मण वहांसे अपने अपने घरोंको गये और राजा पापके प्रभावसे क्षणमात्रमें महाकष्टको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ और अपने राज्यको त्यागकर तापी गोदावरी गंगा यमुना आदि तीर्थोंपर सदा भ्रमण किया ॥ २६ ॥ जब तीर्थोंपर भ्रमता हुआ राजा वृन्दावनमें आया उस समय वृंदावनकी

इत्युक्त्वा ते नृपं सर्वे स्वं स्वं स्थानं गतास्ततः । तेन पापप्रभावेण राजा कष्टं गतः क्षणात् ॥ २५ ॥ स तु राज्यं परित्यज्य तीर्थेतीर्थेऽभ्रमत्सदा । तापीं गोदावरीं चैव गंगा यमुनमेव च ॥ २६ ॥ तीर्थेतीर्थे परिभ्रम्य वृंदावनमगान्नृपः । दृष्ट्वा वृंदावने शोभां प्रीत्युत्फुल्लमना नृपः ॥ २७ ॥ इतिहासः श्रुतो राज्ञा कश्चिद्विप्रप्रसादतः । पंचभीष्मव्रतस्यास्य महिमा बहुवर्णितः ॥ २८ ॥ ॥ ६ ॥

शोभाको देखकर राजाका चित्त प्रसन्न हो गया ॥ २७ ॥ वहां किसी द्विजकी कृपासे एक इतिहास सुना तो उसमें पंचभीष्मव्रतकी महिमा बहुत वर्णन की हुई थी ॥ २८ ॥

और सुना कि जो बुद्धिमान् पंचभीष्म व्रत ब्रह्मचर्यसे करे वह मद्य मांस और मैथुन आदिको दूरसे त्याग देवे ॥ २९ ॥ अंबरीष राजा ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनकर जैसे कहा था वैसे ही विधिपूर्वक पंचभीष्म नाम व्रत किया ॥ ३० ॥ उस व्रतके प्रभावसे राजा निर्मलताको प्राप्त हुआ और कालिंदी (यमुना) में स्नान करके ब्राह्मणोंको

पंचभीष्मव्रतं यस्य ब्रह्मचर्येण धीमता । मद्यमांसादिकं त्याज्यं मैथुनं दूरतस्त्यजेत् ॥२९॥ इति द्विजवचः श्रुत्वा ह्यंबरीषो महीपतिः । व्रतं चकार विधिवद्यथोक्तं तत्तथाऽकरोत् ॥ ३० ॥ तेन व्रतप्रभावेण राजा निर्मलतामगात् । स्नानं कृत्वा तु कालिन्द्यां दानं दत्त्वा द्विजातये ॥ ३१ ॥ राजा प्रसन्नचित्तस्तु स्वगृहं पुनरागमत् । वृत्तांतं कथयामास जनानां पुरवासिनाम् ॥ ३२ ॥ तेऽपि श्रुत्वा वचस्तस्य भूपस्य प्रणयोदितम् । तेऽपि सर्वे यथा योग्यं व्रतं चक्रुर्विधानतः ॥ ३३ ॥

दान देकर ॥ ३१ ॥ प्रसन्नचित्त हुआ राजा अपने घरमें आया और संपूर्ण पुरवासियोंको वह सब वृत्तांत कहकर सुनाया ॥ ३२ ॥ प्रेमसे कहा हुआ उस राजाका वचन सुनकर वे संपूर्ण पुरवासी विधानसे यथायोग्य व्रत किये ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य इस कथाको सुनाता है और जो इस कथाको सुनता है ये दोनों ही पापोंसे निर्मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पंचभीष्मव्रतमाहात्म्ये भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ भीष्मजी बोले–हे पार्थ युधिष्ठिर ! अब एकाग्रचित्तसे पंचभीष्मकी कथा और सुनो कि

य इमां श्रावयेत्प्राज्ञः श्रृणुयाच्चैव यो नरः । उभौ पापविनिर्मुक्तौ यातो ब्रह्मसलोकताम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चभीष्मकव्रतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ॥ श्रृणुष्वैकमनाः पार्थ माहात्म्यं भीष्मपञ्चकम् । कथां द्वितीयदिवसे कर्तव्यं च यथा नरैः ॥ १ ॥ अथवा शाकाहारेण निराहारेण वा पुनः । स्त्रीभिर्वा भक्तियोगेन कर्तव्यं धर्मवर्द्धनम् ॥ २ ॥ विधानं नात्र कर्तव्यमीषत्पुण्याभिवृद्धये । सर्वकाम समृद्ध्यर्थ पुरा पृथुरकारयत् ॥ ३ ॥

मनुष्यको दूसरे दिन जैसा करना चाहिये ॥ १ ॥ शाक आहारसे अथवा निराहारसे पुरुषोंको अथवा स्त्रियोंको यह धर्मको बढानेवाला व्रत करने योग्य है ॥ २ ॥ थोडे पुण्यकी वृद्धिके लिये इसका विधान न करे अर्थात् इसको

निष्काम करे। पहले राजा पृथुने सब कामोंकी समृद्धिके लिये इसी व्रतको स्वयं किया था और अपनी प्रजासे भी करवाया ॥ ३ ॥ जो मनुष्य भक्तिभावसे यह पंचभीष्म व्रत करता हैं वह इस लोकमें समृद्धिको प्राप्त होता है और परलोकमें सुखको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ व्रतोंमें अतिश्रेष्ठ यह निर्मल पुण्यरूप व्रत कार्तिकमासमें करनेसे और

पंचभीष्मव्रतं यस्तु कुरुते भक्तिभावतः। इह लोके समृद्धिं तु परे सुखमवाप्नुयात् ॥४॥ यदैतदमलं पुण्यं व्रतानां परमं व्रतम्। कर्तव्यं कार्त्तिके मासे प्रीणनाद्भीष्मपंचकम् ॥ ५ ॥ प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतानां च व्रतं परम्। भीष्मेणैतद्व्रतं प्राप्तमिदं पंचदिनात्मकम् ॥ ६ ॥ इह लोके समं नास्ति देवब्राह्मणपूजने। महापुण्येन मार्गेण इन्द्रो राज्यं करोति च ॥ ७ ॥

मुझ भीष्मको प्रसन्नता करनेवाला होनेसे पंचभीष्म नामवाला हुआ है ॥५॥ श्रीकृष्ण कहते हैं हे ब्रह्मन्! सब व्रतोंमें श्रेष्ठ महापवित्र यह पांच दिनका व्रत भीष्मजीने जैसे प्राप्त किया अब वह कथा कहूंगा ॥ ६ ॥ देवता और ब्राह्मणोंके पूजनेके समान इस लोकमें अन्य पुण्यवस्तु नहीं है इस ही महापुण्यके प्रभावसे इंद्र राज्य करता है ॥ ७ ॥ एक समय इंद्रकी अमरावती नगरीमें रंभा नृत्य कररही थी उस कालमें स्वाभाविक अंगिरा ऋषिकी पुत्री इंद्रके पास आगई ॥ ८ ॥ उस कालमें इंद्रने गुरुकी पुत्रीको पापदृष्टिसे देखा तो देखते ही उसी क्षणमें पापके प्रभावसे इंद्रका श्याम रंग होगया ॥ ९ ॥ उस समयमें इंद्र शीघ्र अमरावती पुरीको त्याकर पृथ्वीतलमें

एकदा अमरावत्यां रंभा नृत्यं करोति च। यदृच्छयाऽङ्गिरःपुत्री ह्यागमच्छक्रसन्निधौ ॥८॥ मघवा पापदृष्ट्या च गुरुपुत्रीं व्यलोकयत्। तेन पापप्रभावेण श्यामाङ्गस्तत्क्षणादभूत् ॥ ९ ॥ शक्रोऽमरावतीं त्यक्त्वा भूतले पुनरागमत्। काशीं प्रयागं मथुरां वृंदावनमवाप्तवान् ॥ १० ॥ कश्चिद्द्विजवरो विज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः। वृन्दावने कथां चक्रे यत्र संनिहितो हरिः ॥ ११ ॥

आया और पृथ्वीतलमें काशी प्रयाग और मथुरा इनकी यात्रा करते हुए वृंदावनमें पहुँचे ॥ १० ॥ जहां हरि (श्रीकृष्ण भगवान्) निवास करते हैं उस वृंदावनमें संपूर्ण शास्त्रोंका पारगामी कोई विद्वान् ब्राह्मण कथा

कररहा था ॥ ११ ॥ इंद्र उस कथाको सुनकर ब्राह्मणको वचन कहने लगे । इंद्र बोले-हे भूदेव ! मैं पिशाचरूपसे पृथ्वीतलमें भ्रमरहा हूं ॥ १२ ॥ ऐसा इंद्रका वचन सुनकर ब्राह्मण वचन कहने लगा ॥ १३ ॥ ब्राह्मण बोला- अहो जो बुद्धिमान् पंचभीष्म व्रत करता है वह व्रतके प्रभावसे संपूर्ण पापोंसे छूटकर निर्मल शरीर होजाता

इंद्रस्तु तां कथां श्रुत्वा द्विजं वचनमब्रवीत् । इंद्र उवाच ॥ अहं पिशाचरूपेण मृत्यु लोकेषु वै भ्रमे ॥ १२ ॥ इतींद्रवचनं श्रुत्वा द्विजो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ द्विज उवाच॥ पंचभीष्मव्रतं यस्तु करोति बुद्धिमान्नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो निर्मलो भवति व्रतात् ॥ १४ ॥ तत्स्थाने कारयामास व्रतं पंचदिनेष्वपि । तेन व्रतप्रभावेण शक्रो निर्भयताम गात् ॥ १५ ॥ सर्वे देवास्तु तत्रैत्य इन्द्रं वचनमब्रुवन् । मर्त्यलोके त्वया शक्र न स्थेयं च मनागपि ॥ १६ ॥

है ॥ १४ ॥ ऐसा कहकर ब्राह्मण पश्चात् उस स्थानमें इंद्रसे पांच दिनोंका पंचभीष्म व्रत करवाया पश्चात् इस व्रतके प्रभावसे इंद्र निर्भयताको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ पीछे संपूर्ण देवता वहाँ आकर इंद्रको यह वचन कहने लगे कि हे इंद्र ! अब यहां मनुष्यलोकमें आप क्षणमात्र भी नहीं रहना ॥ १६ ॥ ऐसे कहनेपर इंद्र देवताओंके सहित अपनी अमरावती पुरीको प्राप्त हुए और वहां जाकर सबसे पंचभीष्म व्रतका माहात्म्य वर्णन किए ॥ १७ ॥ फिर माहात्म्य कहकर इंद्रने कहा कि हे देवताओं ! कहांतक कहूँ इस व्रतका माहात्म्य कहनेको मैं समर्थ नहीं हूँ । यह

इंद्रो देवगणैः सार्धमगमत्त्वमरावतीम् । पंचभीष्मस्य माहात्म्यं सर्वेषां समवर्णयत् ॥ १७ ॥ अस्य व्रतस्य माहात्म्यं नालं वक्तुं क्षमो यतः । सर्वेषां तु प्रकर्तव्यं व्रत पंचदिनात्मकम् ॥ १८ ॥ शक्रस्य वचनं श्रुत्वा व्रतं चक्रुर्विधानतः । मनसा चिंतितं कामं फलं प्रापुस्तु खेचराः ॥ १९ ॥ भीष्म उवाच ॥ इत्येतत्कथितं भूप संपृष्टस्तु यथा त्वया । महिमा मे व्रतस्यास्य कर्तव्यं च यथा नरैः ॥ २० ॥

पंचदिनात्मक व्रत सबको करना चाहिये ॥ १८ ॥ इंद्रका ऐसा वचन सुनकर सब खेचर (देवता) विधानसे यह व्रत किये और यथेच्छ फलको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ भीष्मजी बोले-हे राजन् युधिष्ठिर ! जो तुमने पूछी वह इस व्रतकी महिमा मैंने तुमसे कही है । हे राजन् ! यह मेरा व्रत मनुष्योंको यथावत् विधिसे करना चाहिये ॥ २० ॥

हे राजन्! लोगोंके हितके लिये इस व्रतका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा है क्योंकि व्रतका करना तो दूर रहा इस माहात्म्यके ही पठन श्रवणसे मनुष्योंके पाप दूर होजाते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पंचभीष्मकमाहात्म्ये भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ युधिष्ठिर बोले--हे तात! व्रतके तीसरे दिनका कर्तव्य मुझसे कहो कि मनुष्योंको

लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया। पठनाच्छ्रवणाद्राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१॥ इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चभीष्मकव्रतमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ तृतीये दिवसे तात कर्त्तव्यं तु यथा नरैः। तद्वर्णय व्रतं सर्वं सर्वज्ञोऽसिमतो मम ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कामदं सिद्धिदं तथा। कथां चैव विचित्रां च पापहां सिद्धिदायिनीम् ॥ २ ॥

जैसा करना चाहिये। क्योंकि आपको मैं सर्वज्ञ जानता हूँ ॥ १ ॥ भीष्मजी बोले--हे राजशार्दूल! पहलें त्रेतायुगमें जैसे यह व्रत कामका और सिद्धिका देनेवाला हुआ है वह पापनाशिनी और सिद्धिदायिनी विचित्र कथा तुमसे कहताहूँ सुनो ॥ २ ॥

हे राजन्! पहले त्रेतायुगमें प्रजाके पालनमें तत्पर अयोध्यापुरीमें वसनेवाला असमंजा नाम राजा हुआ ॥ ३ ॥ वह असमंजा राजा एक समयमें वेदपारगामी ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रसन्न चित्त हो विधिसे विष्णुयज्ञ किया तब त्रिकालके जाननेवाले वे ब्राह्मण राजाको कहने लगे ॥ ब्राह्मण बोले--हे राजन्! हे प्रभो! तुमने अज्ञानसे यह यज्ञकर्म

पुरा त्रेतायुगे राजन्नसमंजा नृपोऽभवत्। अयोध्यापुरवासी च प्रजापालनतत्परः ॥ ३ ॥ एकदा तु समाहूय ब्राह्मणान् वेदपारगान्। हरिमीजे विधानेन सुप्रसन्नमनोऽभवत् ॥४॥ ब्राह्मणास्तु त्रिकालज्ञा नृपं वचनमब्रुवन् ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजंस्त्वयाऽत्र यत्कर्म कृत मज्ञानतः प्रभोः ॥ ५ ॥ कन्यकाया धनं यच्च हृतमज्ञानतः पुरा। तेन पापप्रभावेण ते पिता निरयं गतः ॥ ६ ॥ कन्यावित्तेन जीवंति ये नराः पापमोहिताः। पुण्यक्षये ते गच्छंति निरये यातनां पुनः ॥ ७ ॥

किया है। क्योंकि पहले तुम्हारे पिताने अज्ञानसे कन्याका धन हरा था उस पापके प्रभावसे तुम्हारा पिता नरकको प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ पापोंसे मोहित हुए जो मनुष्य कन्याके द्रव्यसे जीते हैं वे पुण्यक्षीण होनेपर नरकोंमें जाकर

वहांकी पीडाओंको भोगते हैं ॥ ७ ॥ इसलिये सब प्रकारसे कन्याका धन ग्रहण नहीं करना। ऐसे ब्राह्मणोंसे कहे हुए राजा असमंजा चिंतासे अत्यंत दुःखित होगये ॥ ८ ॥ इस प्रकार राजाको दुःखित देखकर उन वेदपारगामी ब्राह्मणोंमें जो विद्वद्वर अगस्त्यमुनि थे उन्होंने ऐसा वचन कहा ॥ ९ ॥ अगस्त्यमुनि बोले-हे राजन् ! एक पापोंकी

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् । इति विप्रसमादिष्टो नृपश्चिन्तातुरोऽभवत् ॥ ८ ॥ राजानं दुःखितं दृष्ट्वा ब्राह्मणा वेदपारगाः । तेषां विद्वद्वरोऽगस्त्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापप्रणाशिनीम् । एकदा तु मया राजन् पंचभीष्मव्रतं कृतम् ॥ १० ॥ एतद्व्रतप्रभावेण समुद्रोऽपि च शोषितः । तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र पंचभीष्मव्रतं कुरु ॥ ११ ॥ श्रुत्वेत्थं चावदद्राजा ब्रूहि मां भीष्मपंचकम् । सकुटुंबो व्रतं चक्रे यथाशास्त्रविधानतः ॥ १२ ॥

नष्ट करनेवाली कथा सुनो। कि मैंने एक समयमें पंचभीष्म नाम व्रत किया था ॥ १० ॥ उस व्रतके ही प्रभावसे मैंने समुद्रपान करलिया ॥ ११ ॥ इस प्रकार सुनकर राजा कहने लगा कि उस पंचभीष्म व्रतकी विधि मुझसे कहो। पश्चात् राजा असमंजा अगस्त्यमुनिसे यथावत् शास्त्रविधि सुनकर कुटुंबसहित वह व्रत तीर्थपर किया ॥ १२ ॥ उस पंचभीष्मव्रतके प्रभावसे असमंजाका पिता राजा नरकसे निकलकर दिव्यविमानपर चढकर वैकुंठमंदिरमें गये ॥ १३ ॥ राजा असमंजा पंचभीष्मव्रतके प्रभावसे वैकुंठको जाते हुए अपने पिताको देखकर बडे हर्षको प्राप्त

पंचभीष्मव्रतेनैव निरयान्निःसृतो नृपः । विमानवरमारुह्य गतो वैकुण्ठमंदिरम् ॥ १३ ॥ असमंजास्तु पितरं दृष्ट्वा वैकुण्ठयायिनम् । हर्षं ह्यवाप नृपतिः पंचभीष्मव्रतेन च ॥ १४ ॥ आगत्य स्वगृहं वीर पुनर्यज्ञं समारभत् । हरिमीजे शतैर्यज्ञैर्यथाशक्ति विधानतः ॥ १५ ॥ गोभूहिरण्यवासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ नृपः । स्वयं तु यज्ञावभृथं चकार नृपसत्तमः ॥ १६ ॥

हुए ॥ १४ ॥ हे वीर ! पश्चात् यह राजा असमंजा अपने घर आकर यज्ञका प्रारंभ किया और इसी प्रकार विधानसे यथाशक्ति फिर सैकडों यज्ञ किया ॥ १५ ॥ इस प्रकार यह राजशिरोमणि गौ भूमि सुवर्ण और वस्त्र

ब्राह्मणोंको दान देकर स्वयं यज्ञावभृथ अर्थात् यज्ञांत स्नान किया ॥ १६ ॥ पश्चात् ब्राह्मण आशीर्वाद देकर राजाको कहनेलगे कि हे राजन् ! आपको धन्य है क्योंकि जिससे आपने यह बडा कर्म किया है कि जो देवता ओंको भी दुर्लभ है ॥ १७ ॥ इस प्रकार राजाको ब्राह्मण कहकर अपने अपने स्थानोंको प्राप्त हुए और हे राजन् !

आशीर्वादं ददुर्विप्रा धन्यस्त्वं च महीपते । कृतमेतन्महत्कर्म देवैरपि सुदुर्लभम् ॥१७॥ कथयित्वा च नृपतिं स्वंस्वं स्थानं प्रपेदिरे । स्वयं चापि तु राजर्षिर्वैकुण्ठं प्राप्तवान्नृप ॥१८॥ भीष्म उवाच ॥ एतत्ते कथितं राजन् व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १९ ॥ यत्फलं माघमासे वै प्रयागे मज्जतां नृणाम् । वैशाखे द्वारिकायां तु तपत्याषाढसेवनात् ॥ २० ॥

(युधिष्ठिर) ! वह राजा असमंजा आप भी वैकुंठधामको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ भीष्मजी बोले--हे राजन् ! (युधिष्ठिर) ! इस प्रकार संपूर्ण व्रतोंमें उत्तम यह व्रत आपसे कहा कि जिसके करनेसे मनुष्य संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ १९ ॥ हे पार्थिव युधिष्ठिर ! माघमासमें प्रयागमें स्नान करनेका जो फल है और वैशाखमासमें द्वारिकामें आषाढमें तपतीके स्नानसे जो फल है ॥ २० ॥ और कार्तिकमासमें गदाधर भगवान्के आगे गयामें पिंडदानका जो फल है वही फल इस व्रतका माहात्म्य सुननेसे प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ इति श्रीपद्म पुराणे पंचभीष्मकमाहात्म्ये भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजा युधिष्ठिर बोले--कि हे तात ! चतुर्दशीका

गयायां पिंडदानेन कार्त्तिके माधवाग्रतः । तत्फलं जायते नूनं श्रवणादेव पार्थिव ॥२१॥ इति श्रीपद्मपुराणे पंचभीष्मकव्रतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ चतुर्दश्या व्रतं ब्रूहि कथां पौराणिकीं शुभाम् । यस्याः श्रवणमात्रेण निरयान्मुच्यते नरः ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ॥ शृणु राजन्नहं वच्मि कथां पापहरां पराम् । यस्याः श्रवण मात्रेण कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ २ ॥

व्रत और पुराणोंमें कही हुई उसकी शुभ कथा मुझको सुनाओ क्योंकि जिसके श्रवणमात्रसे ही पुरुष नरकसे छूट जाता है ॥ १ ॥ भीष्मजी बोले हे राजन् ! सुनो मैं पापोंको हरनेवाली वह कथा आपसे कहता हूं कि जिसके श्रवण मात्रसे मनुष्य कर्मबंधनसे छूट जाता है ॥ २ ॥

हे राजन् ! पहले सत्ययुगमें बुद्धिमान् नारदमुनिने महाघोर तप करके जब कामदेवको वशीभूत करलिया ॥ ३ ॥ तब भयसे भ्रांतमन होकर इंद्र अतिचिंताको प्राप्त हुआ और उसने कामकौतूहलादिके सहित रंभाको नारदमुनिके पास भेजा ॥ ४ ॥ रंभाने वहां आकर पांच बाणोंको धारण किया और हाव भाव कटाक्षों द्वारा नाच गान करने

पुरा कृतयुगे राजन् नारदेन सुधीमता । सुदुष्करं तपस्तप्तं कामदेवं वशेऽकरोत् ॥ ३ ॥
तदेन्द्रस्तु भयभ्रांतमनाश्चिंतामवाप सः । रंभां च प्रेरयामास कामकौतूहलादिभिः ॥ ४ ॥
रंभा तु तत्र चागत्य पंचबाणान् समादधे । हावभावकटाक्षेण नृत्यं गानं तथाऽकरोत्
॥ ५ ॥ एवं बहुप्रकारेण कंदुकक्रीडनेन च । उद्यमो यः कृतस्तत्र स सर्वो निष्फलं गतः
॥ ६ ॥ उद्यमे निष्फले याते गता सा शक्रसन्निधौ । वृत्तान्तं कथयामास मुनेस्तस्य च
कारणम् ॥ ७ ॥

लगी ॥ ५ ॥ ऐसे और बहुत प्रकारोंसे और गेंद क्रीडासे वहाँ नारदमुनिको मोहित करनेका जो जो उद्योग रंभा अप्सराने किया वे संपूर्ण निष्फल हो गये ॥ ६ ॥ इस प्रकार उसका उद्यम निष्फल होनेपर रंभा इंद्रके पास गई और उसने मुनिको सब वृत्तांत कहा ॥ ७ ॥ उसके अनंतर नारदमुनि ब्रह्मलोकको प्राप्त किया और वहां ब्रह्माके आगे अपने तपका प्रभाव कहकर सुनाया ॥ ८ ॥ नारदमुनि बोले- हे पिता ! मैंने उग्र तप किया है और व्रत किया है और बारह वर्षपर्यन्त तिलोंका मैंने होम किया है ॥ ९ ॥ पुत्र नारदका ऐसा

नारदश्च ततः पश्चाद्ब्रह्मलोकमुपेयिवान् । ब्रह्माग्रे कथयामास तपसः स्वस्य कारणम्
॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ पितर्मया तपस्तप्तमत्युग्रं कठिनं व्रतम् । द्वादशाब्दकपर्यंतं
तिलहोमो मया कृतः ॥ ९ ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् । ममाग्रे कथितं
यत्तदन्यस्मै न कदाचन ॥ १० ॥ कथनीयं त्वया पुत्र नैव गर्वयुतं वचः । एतद्वाक्यं शिवः
श्रुत्वा उपहासं करोति ते ॥ ११ ॥

वचन सुनकर ब्रह्माने कहा कि हे पुत्र ! यह अभिमानका वचन मेरे आगे तो कहदिया परंतु औरके आगे वह कभी नहीं कहना ॥ १० ॥ क्योंकि यह गर्वयुक्त तुम्हारा वचन कदाचित् शिव सुन पावेंगे तो तुम्हारा बडा उपहास

(ठट्ठा) करेगा ॥ ११ ॥ ऐसा वाक्य कहनेके अनंतर नारद मुनि कैलासमें गये और वहां शिवने आयेहुए मुनिका आदरपूर्वक स्वागत किया ॥ १२ ॥ शिव बोले–अहो नारद मुने ! आप धन्य हैं और आज आपने यह मेरा कैलास पवित्र किया है क्योंकि जिससे पुरुषोत्तम भगवान्‌के भक्तोंका जो आना है वह पुण्यका बढानेवाला है ॥ १३ ॥

एतद्वाक्यावसाने तु कैलासमगमन्मुनिः । शिवस्तमागतं दृष्ट्वा सादरं पृष्टवान्मुनिम् ॥१२॥ शिव उवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि कैलासः पावितो मम । पुरुषोत्तमभक्ताना मागमः पुण्यवर्द्धनः ॥१३॥ कुत्र ते गमनं तात किमर्थमिह चागमः । तवागमो विनाऽर्थं च कदापि न भविष्यति ॥१४॥ एवं देववचः श्रुत्वा शिवाय कथितस्तदा ॥ नारद उवाच ॥ व्रतं कृतं महादेव मया यत्कथयामि ते ॥ १५ ॥

हे तात ! आपका किधर और किसलिये जाना होरहा है यदि यहाँ आपका आना हुआ है तो किसलिये आना हुआ है ? क्योंकि प्रयोजनके विना तो आपका आना कभी हो नहीं सकता ॥ १४ ॥ ऐसा महादेवका वचन सुनकर शिवके प्रति आगे कहाहुआ वृत्तांत नारद मुनि कहने लगे । नारद मुनि बोले--हे महादेव ! एक व्रत जो मैंने किया है वह मैं आपको सुनाता हूँ ॥ १५ ॥ वह व्रत ऐसा है कि जो हरएकसे न होसके और घोर (कठिन) है कामरागसे वर्जित है बारह वर्षका प्रमाणवाला है और कामदेवके मदको भंजन करनेवाला है ॥ १६ ॥ शिव बोले--हे नारद ! आपका कहना सत्य है और आप धन्य हैं आपके समान जितेन्द्रिय दूसरा नहीं है तो भी

दुष्करं पावनं घोरं कामरागविवर्जितम् । द्वादशाब्दकपर्यन्तं कामस्य मदभञ्जनम् ॥१६॥ शिव उवाच ॥ सत्यं नारद धन्योऽसि त्वत्समः को जितेन्द्रियः । तथापि विष्णवे तात न वक्तव्यं कदाचन ॥१७॥ शिवस्य वचनं श्रुत्वा वैकुण्ठमगमन्मुनिः । विष्णुस्तमागतं दृष्ट्वा सादरं पृष्टवान्मुनिम् ॥१८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि मद्भक्तानां शिरोमणिः । कीदृशं तु तपस्तप्तं त्वयाऽद्य मुनिसत्तम ॥ १९ ॥

हे तात ! विष्णुके आगे ऐसा वृत्तांत आप कभी न कहना ॥ १७ ॥ ऐसा शिवका वचन सुनकर नारद मुनि वैकुंठ लोकमें गये । वहां विष्णुने आये हुए मुनिका आदरपूर्वक स्वागत किया ॥ १८ ॥ और श्रीभगवान् बोले- अहो नारद ! आप धन्य हैं और मेरे भक्तोंमें शिरोमणिरूप हैं । हे मुनिसत्तम ! वह तप आपने

कैसा किया है उसका वृत्तांत आज सुनाना चाहिये ॥ १९ ॥ नारद बोले- हे प्रभो ! जो मैंने तप किया है वह अन्यमे दुष्कर है अर्थात् दूसरा इसको नहीं करसकता हे विष्णो ! तपके कारण मैंने कामदेवका मानभंग करदिया है ॥ २० ॥ उस कालमें ऐसा सुनकर भगवान् विष्णु नारदमुनिको कहनेलगे कि हे मुने ! यहां समीपमें ही एक

नारद उवाच ॥ मया प्रभो तपस्तप्तमन्यैरपि सुदुष्करम् । कामदेवस्य भो विष्णो मान भङ्गो मया कृतः ॥२०॥ विष्णुस्तदा मुनिं प्राह जलमानीयतां त्वया । अत्रैव निकटे विप्र सरोऽस्ति विमलोदकम् ॥२१॥ तस्माज्जले त्वयाऽऽनीते ददे ते चतुरो भुजान् । जितकामस्य भो विप्र साफल्यं तव जायते ॥२२॥ इत्युक्तो नारदः प्रागाद् गृहीत्वा जलभाजनम् । पुरं तु दृष्टवांस्तत्र गंधर्वनगरोपमम् ॥ २३ ॥

निर्मलजलवाला सरोवर है उसमेंसे थोडा जल तो लेआओ ॥ २१ ॥ क्योंकि जल लानेपर मैं तुमको चार भुजा दूंगा कि जिससे तुम्हें जितकामकी सफलता होजाय ॥ २२ ॥ इस प्रकार कहेहुए नारद जल लानेका एक पात्र लेकर उस सरोवरपर गये परंतु वहां देखते क्या हैं कि गंधर्वनगरके समान एक बडा सुंदर पुर है ॥ २३ ॥ फिर भी वहाँ नारद मुनिने सुंदरमुखवाली वरको मोहनेवाली सोलह वर्षकी एक कन्या देखी वह कन्या कौन थी कि कामदेव राजाकी पुत्री थी, इसको देखते ही नारद मुनि कामदेवके बाणोंसे पीडित होगये ॥ २४ ॥ और नारद मुनिका मन ऐसी चंचलताको प्राप्त हुआ कि उसको विवाहनेकी इच्छा करके राजा कामदेवसे उसकी याचना

कन्यैकां सुंदरीं श्यामां सुमुखीं वरमोहिनीम् । राज्ञः कामस्य पुत्रीं तां दृष्ट्वा मन्मथ पीडितः ॥२४॥ बभूव नारदस्तत्र मनश्चंचलतां गतः परिणेतुं मनश्चक्रे राज्ञे याच्ञामथा करोत् ॥२५॥ इमां ते कन्यकां राजन् देहि मह्यं तपोनिधे । वरस्तु तव कन्याया मत्समो नैव लभ्यते॥२६॥नारदस्य वचः श्रुत्वा नृपो वचनमब्रवीत् । चतुर्भुजायाहं कन्यां ददामि मुनिसत्तम ॥ २७ ॥

की ॥ २५ ॥ नारदमुनिने कहा--हे राजन् ! हे तपोनिधे ! यह अपनी कन्या मुझे दो आपकी कन्याको मेरे समान अन्य वर नहीं मिलेगा ॥ २६ ॥ ऐसे नारदके वचन सुनकर राजाने वचन कहा कि हे मुनिसत्तम ! मैं

तो यह अपनी कन्या चार भुजावालेको दूंगा ॥ २७ ॥ ऐसा राजाका वचन सुनकर शीघ्र विष्णुभगवान्के पास आये और अपना सब वृत्तांत सुनाकर विष्णु भगवान्से कहा कि मुझको चतुर्भुज बनादो ॥ २८ ॥ उस कालमें ऐसा वचन सुनकर विष्णु भगवान्ने नारदको बंदरका रूप बनादिया । ऐसे रूप लेकर नारद मुनि फिर वहीं शीघ्र आये

इति तस्य वचः श्रुत्वा ययौ विष्णवन्तिकं मुनिः । विष्णवे कथयामास कुरु मां च चतुर्भुजम् ॥२८॥ नारदाय तदा विष्णुः कपिरूपं च दत्तवान् । नारदस्तत्र चागत्य स्त्रीसमूहं व्यलोकयत् ॥२९॥ ऊचुस्ता मर्कटं दृष्ट्वा कपिर्हाऽयं कुतः कुधीः । तासां तद्वचनं श्रुत्वा जलेऽपश्यन्मुखं मुनिः ॥३०॥ मर्कटस्य मुखं दृष्ट्वा तीर्थंतीर्थं भ्रमन् महीम् सर्वतीर्थं परिभ्रम्य वैकुण्ठमगमन्मुनिः ॥३१॥

और स्त्रियोंके झुंडको ताकने लगे ॥ २९ ॥ स्त्रियाँ इनको देखकर कहने लगी कि हाय ! यह कुबुद्धि बंदर यहाँ कहाँसे आया । ऐसे सुनते ही मुनिने अपना मुख जलमें देखा ॥ ३० ॥ तो देखते क्या हैं कि बंदरका मुख है । ऐसा देखकर तीर्थ तीर्थोंपर भ्रमण करतेहुए नारद संपूर्ण तीर्थोंपर भ्रमण करके भगवान्के वैकुंठलोकको गये ॥ ३१ ॥ उस क्षणमें वहाँपर नारद दुःखित होगया और भ्रमणसे निराश होकर वहीं स्थित होगया ॥ ३२ ॥ हे युधिष्ठिर ! विह्वल हुआ नारद जीवनसे भी निराश हो लंबे लंबे श्वास लेता हुआ पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ३३ ॥ पश्चात् वह द्विज संज्ञाको प्राप्त होकर ऐसे विचारता हुआ उठा और संकल्प करके कहने लगा कि मैं निश्चय प्राणोंका त्यागन करूंगा

तस्मिन्क्षणेऽथ विप्रोऽसौ निर्विण्णः समजायत । एवं संभ्रम्य नष्टाशस्तत्रैव निषसाद ह ॥३२॥ नारदो विह्वलो भूत्वा निराशो जीविते नृप । दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य पपात भुवि भारत ॥३३॥ प्राप्य संज्ञां च वैकुंठेऽजल्पदुत्थाय स द्विजः । सत्यं त्यक्ष्याम्यहं प्राणानिति संकल्प्य चेतसि ॥३४॥ वृक्षमूले चितां कृत्वा तस्यां यावत्पतिष्यति । तस्मिन् क्षणे स निर्विण्णो नारदो ब्राह्मणोत्तमः ॥ ३५ ॥ कृपया विष्णुदेवोऽपि प्रत्यक्षं समजायत । प्रविशन्तं चितां विष्णुर्गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥ ३६ ॥

॥ ३४ ॥ दुःखित हुआ यह ब्राह्मणोत्तम नारद एक वृक्षके पास चिता लगाकर जबतक उसपर बैठनेको तैयार हुआ कि ॥ ३५ ॥ तबतक विष्णुदेव प्रत्यक्ष आकर प्रकट होगये और नारदमुनिका दहिना हाथ पकड़कर चितामें

बैठनेसे रोक दिया ॥३६॥ और दिव्य नरनारियोंसे युक्त अपनी पुरीका दर्शन कराया और अनेक प्रकारके वाक्योंसे आश्वासना की। उसके अनंतर रत्नसिंहासनपर स्थित हुए भगवान्‌ने अपना ऐसा रूप दिखाया कि ॥ ३७ ॥ जो शंख चक्र गदा पद्म और गरुड इनसे शोभायमान और कौस्तुभमणि तथा वनमालासे विराजमान विश्वरूपी

स्वां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युताम्। तस्यां निविष्टमात्मानं रत्नसिंहासने शुभे ॥ ३७ ॥ आश्वास्य शंखचक्राब्जगदागरुडशोभितम्। दर्शयामास विप्राय पूर्वोक्तं विश्वरूपिणम् ॥ ३८ ॥ कौस्तुभेन विराजन्तं वनमालाविभूषितम्। तं दृष्ट्वा देवदेवेशमुवाच परया मुदा ॥ ३९ ॥ पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष शरणागतवत्सल ॥ ४० ॥

था। जैसा कि नारदके प्रति अपना रूप वर्णन कररक्खा था वैसाही रूप दिखाया ऐसे उन देवदेवेशके दर्शन करके परम हर्षसे हर्षित हुआ नारद स्तुति करने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नारद कहने लगा--कि, हे पुंडरीकाक्ष शरणागत वत्सल ! मैं पापी हूं पापकर्मा हूं पापात्मा हूं और पापसे ही मेरा जन्म है इसलिये मेरी रक्षा करो ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! आज मेरा जन्म सफल हुआ है और जीना भी सफल हुआ है क्योंकि, जिससे आपके चरणारविंदोंको नमस्कार करता हुआ मेरा मस्तक शोभित होरहा है ॥ ४१ ॥ विष्णुदेव भी मुनिके ऐसे स्तुतिके वचन सुन कर वचन कहने लगे। विष्णु भगवान् बोले--हे नारद मुने ! तुम फिर कभी गर्व नहीं करना और हे प्रतापवान् !

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। यत्त्वांघ्रियुगांभोजं नमन्मूर्द्धाऽभिराजते ॥४१॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुदेवोऽपि मुनिं वचनमब्रवीत् ॥ विष्णुरुवाच ॥ भो नारद त्वया गर्वो न कर्तव्यः कदाचन। अद्य त्वं पंचभीष्मस्य व्रतं कुरु प्रतापवान् ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदो योगी ह्यकरोद्भीष्मपंचकम् ॥ तद्व्रतस्य प्रभावेण शरीरं निर्मलं ह्यभूत् ॥ ४३ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति ते कथितं भूप संपृष्टस्तु यथा त्वया। करोति यो विशुद्धात्मा याति विष्णोः परं पदम् ॥४४॥ इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चभीष्मकव्रतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

अब तुम एक पंचभीष्मकका व्रत करो ॥ ४२ ॥ नारद मुनिने भगवान्‌का ऐसा वचन सुनकर पंचभीष्म नामकका व्रत किगा और उस व्रतके प्रभावसे शरीर निर्मल होगया ॥ ४३ ॥ भीष्मजी बोले--हे राजन् युधिष्ठिर !

जो तुमने व्रतका माहात्म्य मुझसे पूछा था, वह मैंने कहा जो विशुद्धात्मा यह पंचभीष्म व्रत करता है वह विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे पंचभीष्ममाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर बोले--हे सुजन भीष्मजी ! संपूर्ण व्रतोंमें कौन व्रत श्रेष्ठ है और कौन देव सदा पूजा करने योग्य है और

युधिष्ठिर उवाच ॥ सर्वव्रतानां किं श्रेष्ठं को देवः पूज्यते सदा । को धर्मः सर्वधर्माणामेतत्कथय सुव्रत ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ॥ श्रूयतां नृपशार्दूल कथा पापहरा शुभा । सर्वव्रतेषु श्रेष्ठं च सर्वदेवेषु चोत्तमम् ॥ २ ॥ कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव ! यस्य श्रवणमात्रेण नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥ ३ ॥

संपूर्ण धर्मोंमें कौन धर्म सबसे उत्तम है यह मेरे प्रति आप कहो ॥ १ ॥ भीष्मजी बोले--हे नृपशार्दूल ! संपूर्ण पापोंको हरनेवाली वह शुभकथा मुझसे सुनो कि संपूर्ण व्रतोंमें जिसके सुननेसे श्रेष्ठ व्रत और संपूर्ण देवोंमें श्रेष्ठ देव निश्चित होता है ॥ २ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! वह कथा आदिसे मैं तुम्हारे आगे कहता हूँ कि जिसके सुनने मात्रसे ही मनुष्य संकटसे छूट जाता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! संपूर्ण व्रतोंमें तो पंचभीष्म व्रत सबसे श्रेष्ठ है और संपूर्ण देवोंमें विष्णु भगवान् सबसे श्रेष्ठ हैं, तिथियोंमें एकादशी तिथि सबसे श्रेष्ठ है और वर्णोंमें ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ पहले सत्ययुगमें एक सुशर्मा नाम ब्राह्मण हुआ वह प्रभावती नाम पुरीमें बसताहुआ सदा पापकर्मोंमें तत्पर रहता

व्रतेषु पंचभीष्मं च देवेषु विष्णुरुत्तमः । तिथिरेकादशी श्रेष्ठा वर्णेषु ब्राह्मणोत्तमः ॥४॥ पुरा कृतयुगे ह्यासीत् सुशर्मा नाम वै द्विजः । प्रभावतीपुरीवासी पापकर्मरतोऽभवत् ॥ ५ ॥ स्नानसंध्यादिरहितो वेदाध्ययन आलसः । उच्छृंखलस्वभावश्च चित्तोद्वेगकरः सदा ॥ ६ ॥ महाकामी द्विजो भूत्वा दास्याः संगमतत्परः । सकुटुंबः कृषिं चक्रे वृक्षाणामपि छेदकृत् ॥ ७ ॥ तरुच्छेदप्रभावेण अन्धः पंगुरजायत । स्वयमन्धोऽभवद्विप्रः पुत्रैः सह नराधिप ॥ ८ ॥

था ॥ ५ ॥ यह सुशर्मा स्नान संध्या आदि कर्मोंसे रहित, वेदाध्ययनमें आलसी, सदा उच्छृंखलस्वभाव, चित्तको उद्वेग करनेवाला ॥ ६ ॥ और द्विज होकर भी यह महाकामी दासीके साथ रमण करता था । और कुटुंबसहित कृषि करताथा तथा वृक्षोंका छेदन करता था ॥ ७ ॥ उस वृक्षच्छेदन प्रभावसे यह अंधा और पँगुला होगया था !

हे राजन् ! उस पापके प्रभावसे वह सुशर्मा ब्राह्मण पुत्रोंसहित अन्धा होगया ॥ ८ ॥ उसके अनंतर यह कुटुंबसहित सुशर्मा ब्राह्मण अपनी पुरीको त्यागकर सदा तीर्थ तीर्थपर भ्रमण करताहुआ बद्रीनारायणको प्राप्त हुआ और वहां भगवान् नर नारायणके दर्शन कर फिर अपने देशको ही आगया ॥ ९ ॥ उस कालमें चिंतासे

सकुटुंबः पुरीं त्यक्त्वा तीर्थंतीर्थं भ्रमन् सदा । बद्रीनारायणं दृष्ट्वा स्वदेशं पुनरागमत्
॥ ९ ॥ तदा चिंताऽऽतुरो जातः सुशर्मा ब्राह्मणोत्तमः । विप्रोपरि दयां कृत्वा अगमत्
कमलोद्भवः ॥१०॥ विप्रं च दुःखितं दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कुतश्चिन्ता
ऽऽतुरो जातः कथं दीनमुखो भवान् ॥ ११ ॥ केन कर्मविपाकेन अन्धः पंगुश्च जायसे ।
सकुटुम्बस्त्वं यथाऽन्धस्त्वभवो ब्राह्मणोत्तम ॥ १२ ॥

व्याकुल सुशर्मा ब्राह्मणको जानकर ब्राह्मणके ऊपर दया करके ब्रह्माजी वहां आये ॥ १० ॥ और दुखित ब्राह्मणको वहां देखकर ब्रह्माजी वचन कहनेलगे । ब्रह्मा बोले--हे ब्राह्मण ! कौन चिंतासे तुम व्याकुल होरहे हो और किस कारणसे तुम दीनमुख होरहे हो ॥ ११ ॥ और कौन कर्मके फल करके कुटुम्बसहित तुम अन्धे और पांगले हुए हो ? ॥१२॥ हे विप्र ! यह अपने दुःखका कारण मुझसे यथावत् कहो । ऐसे ब्रह्माके वाक्य सुनकर ब्राह्मण वचन कहनेलगा ॥ १३ ॥ ब्राह्मण बोला--हे ब्रह्मन् ! यह मेरा वचन सुनकर मेरे ऊपर दया करनी योग्य है क्योंकि, संपूर्ण कर्मोंके फलसे अंधापन तथा पंगुत्व जो मुझको प्राप्त हुआ है यह दुःसह है अर्थात् मुझसे सहा नहीं जाता ॥ १४ ॥

एतत्कथय विप्र त्वं स्वस्य दुःखस्य कारणम् । इति धातुर्वचः श्रुत्वा विप्रो वचन
मब्रवीत् ॥ १३ ॥ विप्र उवाच ॥ धातर्मम वचः श्रुत्वा दयां कर्तुं त्वमर्हसि । सर्व
कर्मविपाकेन अन्धत्वं दुःसहं मम ॥१४॥ त्वत्प्रसादाच्च देवेश कल्याणं जायते ध्रुवम् ।
तदा नश्यति मे नूनमन्धत्वं नात्र संशयः ॥१५॥ वेदमंत्रास्तपो दानं दया सर्वत्र जन्तुषु । ॥ १८ ॥
सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसंगतिः ॥ १६ ॥

हे देवेश ! आपके प्रसादसे जो मेरा कल्याण होजाय तो निश्चय मेरा यह अन्धापन नष्ट होजाय इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ वेद मंत्र व्रत तप दान संपूर्ण प्राणियोंपर दया श्रेष्ठ शास्त्रोंका श्रवण विष्णु भगवान्की पूजा और

सज्जनोंकी संगति ॥ १६ ॥ ये सब अंधापन और पाँगलापनको नष्ट करनेवाले हैं ऐसा मैंने सुना है । इसलिये हे ब्रह्मदेव ! वह व्रत मुझसे कहो कि जिससे अंधापन और पाँगलापन नष्ट होजाँय ॥ १७ ॥ ऐसा सुनकर ब्रह्मा बोले--हे द्विजोत्तम ! तुम इंद्रियोंको रोककर पंचभीष्म नाम व्रत करो, परंतु पुराणोंमें जैसी विधि कही है वैसी

आंध्यपङ्गुत्वनाशाय भवतीति मया श्रुतम् । अतस्त्वं ब्रूहि मे धातर्व्रतमन्धत्वनाशनम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ द्विज त्वं पंचभीष्मस्य व्रतं कुरु यतात्मवान् । पुराणेषु यथा चोक्तं तत् त्वं कुरु द्विजोत्तम ॥ १८ ॥ कांचनीं राजतीं ताम्रीं मूर्तिं कुर्यात्स्वशक्तितः । स्थापयित्वा विधानेन पूजयेच्च विचक्षणः ॥ १९ ॥ द्वादशाक्षरमंत्रेण पूजनं कारयेद्बुधः । कुंकुमेन समभ्यर्च्य लक्ष्मीनारायणं बुधः ॥ २० ॥

विधिसे करो ॥ १८ ॥ वह विधि हम कहते हैं कि बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम सुवर्णकी अथवा चांदीकी अथवा ताँबाकी यथाशक्ति लक्ष्मी और विष्णु भगवान्की मूर्ति बनवावे और उसको स्थापन करके विधिपूर्वक उसका पूजन करे ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य द्वादशाक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) से केसर चढाकर लक्ष्मी नारायणका पूजन करे ॥ २० ॥ पश्चात् पहले दिन हरि भगवान्के हृदयका कमलोंसे पूजन करके दूसरे दिन बिल्व पत्रोंसे भगवान्के घुटनोंका पूजन करे ॥ २१ ॥ तीसरे दिन केतकीके पुष्पोंसे भगवान्के जंघादेशोंका पूजन करे । चौथे दिन चंपाके पुष्पोंसे हरि भगवान्के चरणोंका पूजन करे ॥ २२ ॥ पांचवें दिन अत्यंत भक्ति

प्रथमे दिवसेऽभ्यर्च्य हृदयं कमलैर्हरेः । द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥ २१ ॥ तृतीये केतकीपुष्पैर्जंघादेशं समर्चयेत् । चतुर्थे दिवसे पादौ पूजयेच्चंपकैर्हरेः ॥ २२ ॥ पंचमे दिवसे विष्णोः सर्वाङ्गं पूजयेन्नरः । तुलसीमंजरीभिश्च पूजयेद्भक्तिभावतः ॥ २३ ॥ हैमी तत्र महामूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्यास्तथैव च । पलेन च तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥२४॥ यथा शक्तिस्तथा कार्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । पंचामृतेन संस्नाप्य पूजनं तु समाचरेत् ॥२५॥

भावसे तुलसीकी मंजरियोंसे विष्णु भगवान्के संपूर्ण अंगोंका पूजन करे ॥ २३ ॥ और लक्ष्मीकी सुवर्णकी मूर्त्ति बनवाकर वहां भगवान्के समीपमें स्थापन करे । वह मूर्त्ति चार (४) तोलेकी अथवा दो (२) तोलेकी अथवा एक (१) ही तोलेकी जैसे अपनी शक्ति हो वैसी बनवावे वित्तकी शठता नहीं करे । और पंचामृतसे

उसका स्नान कराकर पूजन करे ॥ २४ ॥ २५ ॥ उसके अनंतर लोभरहित सदाचारसे युक्त मनको जीतनेवाला और इंद्रियोंको जीतनेवाला ऐसा आचार्य ब्राह्मणको बुलाकर ॥ २६ ॥ शास्त्रानुसार पूजा करावे फिर बुद्धिमान् मनुष्य आचार्यके वचनसे यथाविधि स्वयं पूजा कर ॥ २७ ॥ एकाग्रचित्त होकर ऋतुकालमें

ततो ब्राह्मणमाहूय आचार्यं चाप्यलोलुपम् । सदाचारसमायुक्तं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ॥२६॥ तेनैव कारयेत्पूजां दृष्ट्वा शास्त्रानुसारतः । आचार्यवचनाद्धीमान् पूजां कृत्वा यथाविधि ॥२७॥ ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पूजयेद्यतमानसः । उपचारैः षोडशभिस्तन्मंत्रैर्नामभिस्तथा । तथा पौराणिकैर्वाक्यैः पूजनीयो यथाविधि ॥ २८ ॥ पूजयामि महाविष्णो लक्ष्म्या सह नमोऽस्तु ते ॥ २९ ॥

होनेवाले पुष्पोंसे और उन उन मंत्र और नामोंसे अथवा पौराणिक वाक्योंसे यथाविधि षोडश उपचारों द्वारा पूजन करे ॥ २८ ॥ और ऐसा कहे कि, हे महाविष्णो ! लक्ष्मीके सहित मैं आपका पूजन करता हूँ आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ हे नारायण ! हे रमेश्वर (लक्ष्मीपति)! आपकी प्रसन्नताके लिये मैं शीतल दिव्य और कपूर केसर मिलाहुआ यह चंदन अर्पण करता हूँ ॥ ३० ॥ इति चंदनमंत्र ॥ हे प्रभो ! इस कालमें होनेवाले सुंदरपुष्प मैं आपको अर्पण करता हूँ आपको नमस्कार है ॥ इति पुष्पमंत्र ॥ हे महाविष्णो !

चंदनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुंकुममिश्रितम् । ददामि संतुष्टयर्थं ते नारायण रमेश्वर ॥३०॥ इति चंदनमंत्रः ॥ कालोद्भवानि पुष्पाणि सुजात्यादीनि वै प्रभो ॥ इति पुष्प मन्त्रः ॥ कृष्णागुरुमयं धूपं सर्वदेवेशवल्लभम् । करोमि ते महाविष्णो सर्वकामसमृद्धये ॥ ३१ ॥ इति धूपम् ॥ दीपः पापहरः प्रोक्तस्तमोराशिविनाशनः । दीपेन लभते तेजस्तस्माद्दीपं ददामि ते ॥३२॥ इति दीपम् ॥

यह काले अगरका धूप सब देवेशोंको प्रिय है इसलिये संपूर्ण कामसमृद्धिके लिये मैं आपको अर्पण करता हूं ॥ ३१ ॥ इति धूप मंत्र ॥ हे तमराशिको नष्ट करनेवाले ! यह दीपक पापोंको नष्ट करनेवाला कहा है और जिससे

दीपदान करके तेज प्राप्त होता है इसलिये यह दीप अर्पण करता हूं ॥ ३२ ॥ इति दीप ॥ हे रमानाथ ! यह सुंदर नैवेद्य सुखको देनेवाला और भक्ष्य भोज्यसे युक्त है इसलिये मैं आपको अर्पण करता हूं आप मेरे संपूर्ण पापोंका क्षय करो ॥ ३३ ॥ इति नैवेद्य ॥ हे नारायण ! लक्ष्मीकांत ! आपको नमस्कार है। हे जगत्पते ! इस

नैवेद्यं सौख्यदं चारु भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्। ददामि ते रमानाथ सर्वपापक्षयं कुरु ॥३३॥ इति नैवेद्यम् ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु लक्ष्मीकांत जगत्पते। अनेनार्घ्य प्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः ॥ ३४ ॥ रात्रौ जागरणं कार्यं गीतवादित्रनिस्वनैः। पुराणपठनं नृत्यं श्रोतव्याश्च कथाः शुभाः ॥ ३५ ॥ ततः प्रभातसमये स्नानं कृत्वा जितेन्द्रियः। पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेत्तु प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥

अर्घ्यको देनेसे मेरे मनोरथ सफल हो जावें ॥ ३४ ॥ ऐसा भगवान्का पूजन करके पश्चात् गीत बाजा आदिसे रात्रिमें भगवान्के आगे जागरण करना और पुराणोंका पठन तथा नृत्य करना और पुराणोंकी शुभ कथा श्रवण करनी ॥ ३५ ॥ उसके अनंतर जितेंद्रिय हुआ व्रती पुरुष प्रातःकाल स्नान कर पूर्व कहे हुए विधान करके ही फिर यत्नपूर्वक पूजन करे ॥ ३६ ॥ हे नारद ! ऐसे इस मेरे कहे हुए विधान करके पांच दिनोंमें पूजन करे। पीछे पांचवें दिन बुद्धिमान् मनुष्य इस व्रतका उद्यापन करे ॥ ३७ ॥ परंतु प्रथम पांच वर्षोंतक व्रत करके फिर उद्यापन करे। हे मुने ! व्रतकी संपूर्णताके लिये विधानसे इस प्रकार पूजन आदि करे ॥ ३८ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस विधिके

मयोक्तेन विधानेन कुर्यात्पंचदिनेष्वपि। पञ्चमे दिवसे प्राज्ञ उद्यापनं च कारयेत् ॥३७॥ पंचवर्षं प्रकर्त्तव्यं पश्चादुद्यापनं चरेत्। एवं कुर्याद्विधानेन व्रतसम्पूर्णहेतवे ॥ ३८ ॥ येन वै क्रियमाणेन समस्तैकादशीफलम्। जायेतैव तु न मृषा वाचि सत्यं द्विजोत्तम ॥३९॥ व्रतस्थेन न कर्तव्या सङ्गतिः पापिभिः सह। मिथ्याऽऽलापो न कर्तव्यः समग्र फलकांक्षिभिः ॥ ४० ॥

करनेसे वह फल प्राप्त होता है कि जो सहस्र एकादशी व्रतोंसे फल प्राप्त होता है। ये हमारे वचन असत्य नहीं किंतु सत्यही हैं ॥ ३९ ॥ परंतु व्रतके संपूर्ण फलकी इच्छा करता हुआ व्रती पुरुष पापी पुरुषोंकी संगति न करे और असत्य

भाषण न करे ॥ ४० ॥ व्रती पुरुष स्त्रियोंके साथ आलाप जूवाका खेलना इनको भी दूरसे त्यागदेवे। व्रतके पांचों ही दिनोंमें केवल भगवन्नामका स्मरण करे ॥ ४१ ॥ और दंतधावन (दतोंन) करना आदिसे सब नियम करके प्रथम दिनसे लेकर पांच दिन पर्यंत् निर्विघ्नतासे व्रतको समाप्त करे ॥ ४२ ॥ इति नियम ॥ भीष्मजी

स्त्रीभिर्द्यूतैश्च आलापं व्रतस्थो नैव कारयेत् । स्मर्तव्यं भगवन्नाम व्रती पंचदिनेष्वपि ॥ ४१ ॥ नियमश्च प्रकर्त्तव्यो दंतधावनपूर्वकः । आद्याहे च विधानेन व्रतनिर्विघ्नतां नयेत् ॥ ४२ ॥ इति नियमः ॥ उषःकाले समुत्थाय संगृह्योदकभाजनम् । नैर्ऋतीं हि दिशं गत्वा कुर्यान्मूत्रपुरीषके ॥४३॥ मौनं कृत्वा व्रती राजंस्ततो गच्छेज्जलांतिकम् ॥ ४४ ॥ हस्तशुद्धिं ततः कृत्वा मुखशुद्धिं तु कारयेत् । निर्गुंडीक्षीरिवृक्षस्य काष्ठं वै कंटकान्वितम् । शुद्धं शुचि सुगंधं च गृह्णीयाद्द्वादशांगुलम् ॥ ४५ ॥

कहते हैं--राजन् युधिष्ठिर ! व्रती पुरुष उषाकाल (प्रभातकाल) में उठकर और जलका पात्र लेकर नैर्ऋत्य कोणमें जाकर अनबोल (मौन) हुआ प्रथम विष्ठा मूत्रका त्याग करे पश्चात् जलके समीप जावे ॥४३॥४४॥ वहाँ हाथ पावोंकी शुद्धि करके पश्चात् मुखशुद्धि करे । वह इस प्रकारसे संभालू दूधवाले वृक्ष काँटोंवाले वृक्ष ऐसे पवित्र तथा सुगंधित वृक्षसे बारह अंगुलकी दतोंन लेवे और यह आगे कहा हुआ मंत्र पढे ॥ ४५ ॥ अथ मंत्र-- हे वनस्पते ! आयु बल यश तेज संतति पशु द्रव्य ज्ञान बुद्धि और धारणशक्ति मुझको दो ॥ ४६ ॥ पश्चात्

अथ मंत्रः ॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ ४६ ॥ मानुषे देवखाते च नद्यादौ विमले जले । वैदिकेन च मंत्रेण स्नानं कृत्वा विचक्षणः ॥ ४७ ॥ मृत्स्नया गोमयेनापि तथा धात्रीफलेन च । तिलैश्च सर्व पापघ्नैः स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ ४८ ॥ परिधाय शुचिर्वासो नित्यकर्म समाचरेत् । पूर्वोक्तेन विधानेन पूजनं कारयेत्सुधीः ॥ ४९ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य मनुष्यके बनाये हुए तालाबआदिके अथवा देवखात नदीआदिके निर्मल जलमें वैदिक मंत्रोंसे स्नान करके ॥ ४७ ॥ संपूर्ण पापोंके हरनेवाले सुंदर मृत्तिका गोमय आँवले और तिल इनसे विधि पूर्वक स्नान करे ॥ ४८ ॥ पश्चात् पवित्र हो श्वेतवस्त्र धारण करके अपना नित्यकर्म करे और बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वोक्त

विधानसे भगवान्का पूजन करे ॥ ४९ ॥ हे विप्र ! इस प्रकारकी विधिसे तुम पंचभीष्म व्रत करो । हे ब्रह्मन्! यह महाव्रत देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ५० ॥ ब्राह्मणको मारनेवाला गुरुभार्यासे गमन करनेवाला मदिरा पीनेवाला द्रव्यको चोरानेवाला और महापातकी एक बार इस पूजनमात्रके करनेसेही सब पापोंसे छूटजाता है। फिर व्रतके करनेसे

अनेन विधिना विप्र पंचभीष्मव्रतं कुरु । महाव्रतमिदं ब्रह्मन् देवानामपि दुर्लभम् ॥ ५० ॥ ब्रह्महा गुरुगामी च मद्यपो वा धनापहः । सकृत्पूजनमात्रेण मुच्यते किमुतान्यतः ॥ ५१ ॥ नातः परतरं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते । किं कुलेन किमाचारैः किं शीलेन गुणेन च ॥ ५२ ॥ यो हरिं पूजयेत् सम्यक् सः कुलीनः स बुद्धिमान् । जम्बूद्वीपे महापुण्ये जन्मः यः प्राप्य मानवः ॥ ५३ ॥

छुटे इसको कहना ही क्या है ॥ ५१ ॥ इससे अधिक श्रेष्ठ व्रत तीनों लोकोंमें और नहीं है क्या कुलसे हो सकता है क्या आचारसे क्या शीलसे और क्या गुणसे हो सकता है अर्थात् ये सहायक नहीं हो सकते ॥ ५२ ॥ महापवित्र जंबूद्वीपमें जन्म पाकर जो बुद्धिमान् मनुष्य हरि भगवानका पूजन करता है स्मरण करता है वही कुलीन आदि गुणोंसे युक्त है ॥ ५३ ॥ इस व्रतको नहीं करके ही मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है करनेसे कभी नहीं होता। धर्महीन मनुष्यके दिन वैसे ही आते हैं और चलेजाते हैं कोई सुकृत नहीं करता है॥५४॥ जो यह व्रत पूजन नहीं करता है उसका जीना ऐसे निरर्थक है कि जैसे लुहारकी धमनी। इसलिये बारंबार प्रभु विष्णुका

न करोति व्रतं ह्येतद्याति तस्मादधोगतिम् । धर्महीनस्य मर्त्यस्य दिनान्यायान्ति यान्ति च ॥ ५४ ॥ लोहकारस्य भस्त्रेव तस्य जन्म निरर्थकम् । पूजयेत्तं प्रभुं विष्णुं भूयोऽपि द्विजमर्चयेत् ॥ ५५ ॥ माघे वा कार्त्तिके चैत्रे आषाढे श्रावणेऽपि वा । पुण्येषु पुण्यमासेषु व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ५६ ॥ कार्त्तिके तु विशेषेण फलं प्राप्नोति मानवः । प्रातः स्नानं विधायाथ दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ५७ ॥

पूजन करे और ब्राह्मणोंका पूजन करे ॥ ५५ ॥ माघ कार्त्तिक चैत्र आषाढ और श्रावण इन मासोंमें तथा अन्य पवित्र मासोंमें इस व्रतको करे ॥ ५६ ॥ कार्त्तिकमासमें तो इस व्रतके करनेसे मनुष्य विशेष करके फलको प्राप्त होता है । वह इस प्रकारसे कि व्रती मनुष्य प्रातःकाल उठकर दिशाको जाकर दंतधावनपूर्वक स्नान करे ॥ ५७ ॥

इस प्रकारसे ब्रह्माके वचन सुनकर ब्राह्मण वचन कहनेलगा। ब्राह्मण बोला--हे प्रभो ! इस व्रतके उद्यापनकी विधि विस्तार करके मुझसे कहो ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजी बोले-कि हे विप्र ! विशेष करके कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें एकादशीको इस व्रतको प्रारंभ करे और पूर्णिमाको समाप्ति करदेवे ॥ ६३ ॥ अब विष्णु धर्मोत्तरसे पंचभीष्म व्रतके उद्यापनकी

इति तद्वचनं श्रुत्वा विप्रो वचनमब्रवीत् ॥ विप्र उवाच ॥ उद्यापनविधिं ब्रूहि विस्तरेण मम प्रभो ॥ ६२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिक्यां शुक्लपक्षे तु एकादश्यां विशेषतः । तदारभ्य च कार्त्तिक्यां पूर्णिमान्तं व्रतं चरेत् ॥ ६३ ॥ अथ पंचभीष्मव्रतोद्यापनं विष्णुधर्मोत्तरे ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ पंचभीष्मे तु संप्राप्ते पंचगव्यैः शुचिर्भवेत् । स्वकृतं पापमुच्चार्य ज्ञातं च सकलं भवेत् ॥ ६४ ॥ संकल्पं नियतः कुर्यात्कार्त्तिक्यां तु जितेन्द्रियः । व्रतं समाप्य पश्चात्तु कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ ६५ ॥

विधि कहते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् बोले-प्रथम पंचभीष्म प्राप्त होनेपर पंचगव्यसे अपने शरीरको पवित्र करे और जाने हुए अपने संपूर्ण पाप उच्चारण कर ॥ ६४ ॥ संकल्प करे। पश्चात् सावधान हुआ जितेंद्रिय व्रती पुरुष

इस प्रकारसे ब्रह्माके वचन सुनकर ब्राह्मण वचन कहनेलगा। ब्राह्मण बोला--हे प्रभो ! इस व्रतके उद्यापनकी विधि विस्तार करके मुझसे कहो ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजी बोले--कि हे विप्र ! विशेष करके कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें एकादशीको इस व्रतको प्रारंभ करे और पूर्णिमाको समाप्ति करदेवे ॥ ६३ ॥ अब विष्णु धर्मोत्तरसे पंचभीष्म व्रतके उद्यापनकी

इति तद्वचनं श्रुत्वा विप्रो वचनमब्रवीत् ॥ विप्र उवाच ॥ उद्यापनविधिं ब्रूहि विस्तरेण मम प्रभो ॥ ६२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिक्यां शुक्लपक्षे तु एकादश्यां विशेषतः । तदारभ्य च कार्त्तिक्यां पूर्णिमान्तं व्रतं चरेत् ॥ ६३ ॥ अथ पंचभीष्मव्रतोद्यापनं विष्णुधर्मोत्तरे ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ पंचभीष्मे तु संप्राप्ते पंचगव्यैः शुचिर्भवेत् । स्वकृतं पापमुच्चार्य ज्ञातं च सकलं भवेत् ॥ ६४ ॥ संकल्पं नियतः कुर्यात्कार्त्तिक्यां तु जितेन्द्रियः । व्रतं समाप्य पश्चात्तु कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ ६५ ॥

विधि कहते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् बोले-प्रथम पंचभीष्म प्राप्त होनेपर पंचगव्यसे अपने शरीरको पवित्र करे और जाने हुए अपने संपूर्ण पाप उच्चारण कर ॥ ६४ ॥ संकल्प करे। पश्चात् सावधान हुआ जितेंद्रिय व्रती पुरुष

कार्त्तिककी पूर्णिमामें व्रतको समाप्त करके पीछे उद्यापन करे ॥ ६५ ॥ वह इस प्रकारसे कि प्रथम विद्वान् ब्राह्मण आचार्यको वरे और पश्चात् ऋत्विक् ब्राह्मणोंको वरे और स्वस्तिवाचन करावे और कालरूप जनार्दन भगवान्की सुवर्णकी मूर्त्ति बनवावे ॥ ६६ ॥ वह ऐसी कि १६ मासेकी हो अथवा ८ मासेकी हो अथवा एक ही मासेकी हो

आचार्यं वरयेद्विद्वान् ब्राह्मणानृत्विजस्तथा । स्वस्तिवाचनपूर्वेण कालरूपं जनार्दनम् ॥६६॥ कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्द्धेन च वा पुनः । माषमात्रसुवर्णेन वित्तशाठ्य न कारयेत् ॥ ६७ ॥ उपचारैः षोडशभिर्ह्यर्चितां वस्त्रवेष्टिताम् । प्रतिमां पूजयेत्पश्चाद्रात्रौ जागरणं तथा ॥ ६८ ॥ प्रभाते विमले सूर्ये कृत्वाऽह्निकपुरःसरम् । जुहुयात्पुरुषसूक्तेन स्वाहाकारैः पुनः पुनः ॥ ६९ ॥ दशानामपि विष्णोश्च पिप्पलस्य समिद्धुतम् । पायसेन शतं चाष्टौ कृत्वा पूर्णाहुतिं तदा ॥ ७० ॥

यथाशक्ति मूर्ति बनवावे वित्तकी शठता न करे ॥ ६७ ॥ पश्चात् वस्त्र लपेटकर उस मूर्त्तिको षोडश उपचारोंसे पूजन करे और रात्रिमें जागरण करे ॥ ६८ ॥ और प्रातःकाल सूर्य उदय होनेपर अपना नित्यनियम करके प्रतिमंत्र स्वाहा शब्द उच्चारण करके पुरुषसूक्तसे हवन करे ॥ ६९ ॥ पश्चात् पीपलकी समिधा प्रज्वलित करके १०८ आहुतियाँ खीरसे विष्णु भगवान्के दश अवतारोंके निमित्त देवे ॥ ७० ॥ पश्चात् वस्त्रसे लपेटीहुई और पूजन कीहुई वह भगवान्की मूर्त्ति और सवत्सा गौ अर्थात् बछडेवाली गौ आचार्यको देवे ॥ ७१ ॥ इसके अनंतर एकाग्र चित्तसे ब्राह्मणियों सहित पांच ब्राह्मणोंको षट्रसके पदार्थ भोजन करावे और बंधुओंके साथ आप भोजन

ततस्तु प्रतिमां दद्यात् स्वर्च्चितां वस्त्रवेष्टिताम् । सवत्सां विधिना धेनुमाचार्याय निवेदयेत् ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणान् पंच योषिद्भिः षड्रसान्नं तु भोजयेत् । भुञ्जीत बन्धुभिः सार्द्धमेकाग्रेणैव चेतसा ॥ ७२ ॥ एवं कृत्वा व्रतमिदं पवित्रं पापनाशनम् । पूर्वजन्मार्जितैः पापैरिह जन्मार्जितैरपि ॥ ७३ ॥ आगामिजैश्च पापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः । द्विजस्तद्वचनं श्रुत्वा व्रतं चक्रे विधानतः ॥ ७४ ॥ पंचभीष्मप्रभावेण शुद्धो भवति पातकैः । व्रतस्यास्य प्रभावेण दिव्यचक्षुर्द्विजोऽभवत् ॥ ७५ ॥

करे ॥ ७२ ॥ पापोंको नष्ट करनेवाली यह पवित्र व्रत पूर्व कहीहुई इस विधिसे मनुष्य करे तो पूर्वजन्म वर्तमान जन्म और आगे होनेवाला जन्म इन तीनों जन्मोंके पापोंसे छूटजाता है । इस प्रकारके ये वाक्य ब्राह्मण सुनकर विधिपूर्वक इस व्रतको किया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ और इस पंचभीष्म व्रतके प्रभावसे पापोंसे छूटकर शुद्ध हो

कुटुंबसहित दिव्यचक्षु हो गया ॥ ७५ ॥ यह सुशर्मा ब्राह्मणोत्तम इस पंचभीष्म व्रतका माहात्म्य इस प्रकार सबको सुनाया और सर्वथा तो पंचभीष्म व्रतका माहात्म्य कहनेको ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है ॥ ७६ ॥ भीष्मजी बोले--हे राजन् (युधिष्ठिर) ! भक्ति भावसे यह पंचभीष्म व्रत तुमको करना योग्य है। क्योंकि

सर्वेषां कथयामास सुशर्मा ब्राह्मणोत्तमः । पंचभीष्मस्य माहात्म्यं नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥ ७६ ॥ भीष्म उवाच ॥ राजंस्त्वया व्रतमिदं कर्तव्यं भक्तिभावतः । सर्वारिष्टप्रशमनं सर्वपापौघनाशनम् ॥ ७७ ॥ इदं व्रतं महापुण्यं ये शृण्वंति नरोत्तमाः । इह भुक्त्वा तु विपुलान् सर्वान् कामान् मनोरथान् ॥ अन्ते गच्छंति ते स्वर्गं कुलकोटिशतैरपि ॥७८॥ इति श्रीपद्मपुराणे पंचभीष्मकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिससे यह व्रत संपूर्ण अरिष्टोंको दूर करनेवाला और पापसमूहोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ७७ ॥ इस व्रतकी विधि और माहात्म्यको जो उत्तम मनुष्य श्रवण करेंगे वे इस लोकमें संपूर्ण कामनाओंको भोगकर अंतमें अपनी कुल कोटियों सहित स्वर्गमें प्राप्त होवेंगे ॥७८॥ इति श्रीपद्मपुराणे पंचभीष्ममहिमवर्णने भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति

पंचभीष्मकव्रतकथा भाषाटीकासहिता

समाप्ता ।

अथ

गोत्रिरात्रव्रतकथा भाषाटीकासहिता

प्रारभ्यते ।

अथ गोत्रिरात्रव्रतकथाभाषाटीकाप्रारंभ। दोहा--गोपालहि कर जोरि युग, विनमि बहोरि बहोरि। गोत्रिरात्र व्रतकी कथा, भाषा कहुं रस वोरि ॥ १ ॥ सूतजी बोले--हे शौनक! कुरुसेनाका क्षय होनेपर जब भारत युद्ध निवृत्त होगया तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर राज्यसिंहासनपर बैठकर भ्राताओंसहित आनंद भोगने

अथ गोत्रिरात्रव्रतकथाप्रारंभः ॥ सूत उवाच ॥ निवृत्ते भारते युद्धे कुरुसैन्ये क्षयं गते। राजा धर्मसुतः श्रीमान् भ्रातृभिः सह मोदते ॥ १ ॥ मागधैः स्तूयमानश्च ससैन्येना तिशोभितः। श्रीकृष्णेन समायुक्तः प्राप्तो नागाह्वये पुरे ॥ २ ॥ अभिषेकं ततश्चकुः सुराद्या मुनिसंयुताः। दूर्वापुष्पांकुरैर्युक्तं कुर्युर्गानं सुरस्त्रियः ॥ ३ ॥ दुकूलादिभिरेवासौ तोषयामास तान् द्विजान्। नृपाश्च सनरा ये तान् मागधान्विविधानपि ॥ ४ ॥

लगे ॥ १ ॥ वह इस प्रकारसे कि मागधों करके स्तुति किये हुए सैन्य करके चारों तर्फसे भूषित श्रीकृष्ण भगवान्से युक्त राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ देवता और मुनियोंने पुष्पांकुरोंसे युक्त राजाका अभिषेक किया और देवताओंकी स्त्रियाँ गान करनेलगीं ॥ ३ ॥ पश्चात् राजा युधिष्ठिर रेशमीवस्त्र आदिकोंसे संपूर्ण द्विजोंका सत्कार करतेभये और मनुष्यों सहित जो आयेहुए राजे थे उन संपूर्णोंका सत्कार किये ॥ ४ ॥ इस प्रकार संपूर्ण ऋषियोंको और राजाओंको अपने स्थानोंको भेजकर पांडुनंदन (राजा युधिष्ठिर) भक्तिसे श्रीकृष्णभगवान्को प्रसन्न किये ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर कहते हैं--हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तोंको अभय देनेवाले !

ऋषीन् सर्वांश्च प्रस्थाप्य स्वस्थानानि नृपानपि। भक्त्या तु तोषयामास श्रीकृष्णं पाण्डुनंदनः ॥ ५ ॥ देवदेव जगन्नाथ भक्तानामभयप्रद। प्रसादात्तव गोविंद कौरवा युधि निर्जिताः ॥६॥ राज्यं निष्कण्टकं प्राप्तं भक्तियोगात्तवानघ। त्वत्सेवापरियुक्तानां प्रसादं कुरु केशव ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वा स्थितः पाण्डुपुत्रो भ्रातृसमन्वितः। पाञ्चाली परया भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥

हे गोविंद ! आपके प्रसादसे मैंने कौरव युद्धमें जीता है ॥ ६ ॥ और हे अनघ (पापरहित) ! आपके भक्तियोगसे मैंने निष्कंटक राज्य प्राप्त किया है। हे केशव ! आपकी सेवामें युक्त जो भक्तजन हैं उनके ऊपर कृपा करो ॥७ ॥ इस प्रकार स्तुति करके जब राजा युधिष्ठिर भ्राताओंसहित चुपके होकर स्थित होगये तब द्रौपदी

परमभक्तिसे पुरुषोत्तम भगवान्‌को नमस्कार करके ॥ ८ ॥ अंजलि बांधे हुए श्रीकृष्ण भगवान्‌को वचन कहने लगी । हे करुणार्णव ! हे कंसासुरनिकृंतन ! ॥ ९ ॥ हे गोपियोंके वस्त्र हरनेवाले ! हे देवदेवेश ! हे प्रभो ! भक्तोंकी भक्ति भावके कारण मेरे ऊपर प्रसाद करो ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आपके मुखारविन्दसे कोई ऐसा उत्तम व्रत सुना

बद्धांजलिस्ततो भूत्वा प्रोवाच परमेश्वरम् । करुणार्णवसंपूर्ण कंसासुरनिकृन्तन ॥९॥ दुकूलहरणासक्त सतां सद्भक्तिभावतः । न ज्ञातं देवदेवेश प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ १० ॥ किमपि श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखाद् व्रतमुत्तमम् । येन संचीर्णमात्रेण सौभाग्यं पति भक्तता ॥ ११ ॥ जायन्ते बहुपुत्राश्च भवन्ति च चिरायुषः ॥ १२ ॥ पांचालतनयावाक्यं श्रुत्वा कृष्णोऽब्रवीदिदम् । गोत्रिरात्रमिति ख्यातं पांचालि कथयामि ते ॥ १३ ॥

चाहती हूं कि जिसके करनेमात्रसे ही स्त्रियोंके अखंड सौभाग्य और पतिमें भक्ति हो ॥ ११ ॥ उसके अनंतर उसी व्रतसे स्त्रियोंके बहुत पुत्र हों और बडी आयुवाले हों ॥ १२ ॥ द्रौपदीके ऐसे वाक्य सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि, हे पांचालि (द्रौपदी) ! तुम जो पूछा ऐसा व्रत सो 'गोत्रिरात्र' नामका प्रसिद्ध है वह मैं तुझसे कहता हूं ॥ १३ ॥ हे सुव्रते (द्रौपदि) ! वही गोत्रिरात्र व्रत पूर्वकालमें ब्रह्माजीने तो सावित्रीके अर्थ कहा है और महर्षि वसिष्ठजीने अरुन्धतीके अर्थ कहा है उसको सुनो ॥ १४ ॥ यमुनाकुण्डमें रहनेवाला कालिय नागका अब मैंने दमन किया तब यशोदाने भी वही व्रत किया है ॥ १५ ॥ द्रौपदी बोली-हे माधव !

सावित्र्यै पुरतो धात्रा वसिष्ठेन महर्षिणा । अरुन्धत्यै प्रगदितं तद्व्रतं शृणु सुव्रते ॥१४॥ यमुनाह्रदमध्यस्थः कालियो निर्जितो मया । यशोदया तदा चीर्णं गोत्रिरात्रव्रतं शुभम् ॥ १५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ यस्मिन्मासे प्रकर्तव्यं यथा दानं यथा विधिः । तत्सर्वं कथय स्वाशु यदि तुष्टोऽसि माधव ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ नभस्यस्य सिते पक्षे या भवेच्च त्रयोदशी । व्रतं तस्यां प्रकर्तव्यं सौभाग्यधनवांछया ॥ १७ ॥

जो आप मुझपर प्रसन्न हो तो इस व्रतकी संपूर्ण विधि मुझसे शीघ्र कहो कि जिस महीनेमें यह व्रत करन चाहिये तथा जैसा दान इसमें करना चाहिये और जैसी विधिसे यह करना चाहिये ॥ १६ ॥ ऐसा सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले-हे द्रौपदि ! जो स्त्री सौभाग्य और धन आदिकी इच्छा करे तो भाद्रपदमासमें

शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन इस व्रतको करे ॥ १७ ॥ वह ऐसे कि प्रथम सूर्योदयमें उठकर दंतधावनपूर्वक शुद्धि करे पश्चात् लक्ष्मी नारायण भगवान्के आगे शुभ गोत्रिरात्र व्रतका नियम निवेदन करे ॥ १८ ॥ उसके अनंतर स्वयं प्रातःस्नान करके पंचामृतसे कमलापति भगवान् स्नान करावे और चंदन पुष्प आदिकोंसे भगवान्का

सूर्योदये समुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् । लक्ष्मीनारायणस्याग्रे त्रिरात्रनियमं शुभम् ॥ १८ ॥ प्रातः स्नानं ततः कृत्वा स्नापयेत्कमलापतिम् । पंचामृतेन श्रीखण्डैः कुसुमै श्चार्चयेत्ततः ॥१९॥ चंपकैः शतपत्राद्यैः पूजां पुष्पैः प्रकल्पयेत् । अर्घ्यं दद्याद्विधानेन नानाविधफलैः शुभैः ॥२०॥ पादौ नमामि बलिदानवमर्दनाय जानू नमामि भुवनत्रय पालकाय । कट्यौ नमामि कमलारमणाय चित्ते योगेश्वराय करवक्त्रशिरोंऽसनेत्रे ॥२१॥

पूजन करे ॥ १९ ॥ पश्चात् चंपा कमल आदिके पुष्पोंसे पूजा करे और विधिसे अनेक प्रकारके शुभ फलोंसे भगवान्को अर्घ देवे ॥ २० ॥ और प्रार्थना करे कि हे भगवन् ! बलिदानवके मर्दनकरनेवाले आपके चरणोंको नमस्कार करती हूं, तीनों भुवनोंकी पालना करनेवाले आपके घुटनों (गोडों) को मैं नमस्कार करती हूं। कमलारमण आपकी कटियोंको मैं नमस्कार करती हूं। आप योगेश्वरके हस्त मुख शिर कंधा और नेत्रोंको मैं नमस्कार करती हूं ॥ २१ ॥ अथ पूजाविधि ॥ हे क्षीरसमुद्रमें निवास करनेवाले ! हे वासुदेव ! हे जगत्प्रभो !

अथ पूजाविधिः ॥ क्षीराब्धिकृतसंवास वासुदेव जगत्प्रभो । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सौभाग्यं देहि मे सदा ॥२२॥ अर्घ्यम्० । कूष्माण्डैर्नालिकेरैश्च बीजपूरैश्च दाडिमैः । अर्घ्यं दद्या द्रमाकान्ते कामधेनौ तथैव च ॥ २३ ॥ कामधेनु प्रार्थना ॥ रोगान्निहन्तु मम कामदुघा प्रसन्ना दौस्थ्यं निहन्तु मम कामदुघा प्रसन्ना । लक्ष्मीं ददातु मम कामदुधा प्रसन्ना सौख्यं ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना ॥ २४ ॥

यह मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो और मुझको अखंड सौभाग्य दो ॥ २२ ॥ इति अर्घ्य ॥ कोहला नारियल बिजौरा नींबू और दाडिम इन फलोंसे रमाकांत भगवान्को अर्घ देवे और कामधेनु (गौ) को अर्घ देवे ॥ २३ ॥ तदनंतर कामधेनुकी प्रार्थना करे । प्रसन्न हुई कामधेनु मेरे रोगोंको नष्ट करो । प्रसन्न हुई कामधेनु मेरा

 दौःस्थ्य (व्यग्रता) को दूर करो । प्रसन्न हुई कामधेनु मुझको लक्ष्मी दो और प्रसन्न हुई कामधेनु मुझको सुख
 दो ॥ २४ ॥ प्रसन्न हुई कामधेनु मुझको बडी आयु दो । प्रसन्न हुई कामधेनु मुझको पुत्र दो । प्रसन्न हुई काम
धेनु मेरे विघ्नोंको नष्ट करो और प्रसन्न हुई कामधेनु (गौ) मुझको वांछित फल दो ॥ २५ ॥ तदनंतर तीसर

आयुर्ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना पुत्रान् ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना । विघ्नं निहन्तु मम कामदुघा प्रसन्ना इष्टं ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना ॥ २५ ॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते वंशपात्रत्रिकं शुभम् । तथा चान्नसमायुक्तं तथा फलसमन्वितम् ॥ २६ ॥ दद्यात्कामदुघायै च व्रतसंपूर्णहेतवे । रात्रौ च सर्वतोभद्रं मंडलं च प्रकल्पयेत् ॥२७॥ माषैकस्य सुवर्णस्य लक्ष्मीनारायणं शुभम् । कृत्वा तत्र न्यसेद्देवं व्रतसंपूर्णहेतवे ॥ २८ ॥

दिन प्राप्त होनेपर बांसोंकी तीन सुंदर छाबाडियें अन्न तथा फलोंसे पूर्ण करके व्रतकी पूर्णताके लिये गौको अर्पण करे और रात्रिमें सर्वतोभद्र मंडल रचवावे ॥ २६ ॥ २७ ॥ पश्चात् एक मासे सुवर्णकी सुंदर लक्ष्मीनारायणकी मूर्ति बनवाकर व्रतकी संपूर्णताको लिये देवको वहां मंडलमें स्थापन करे ॥ २८ ॥
और गीत बाजाओंके जाननेवालोंसे रात्रिमें भगवान्के आगे जागरण करे और प्रातःकालमें यथाविधि हवन करावे ॥ २९ ॥ पश्चात् सुंदर वस्त्रोंसे अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण और ब्राह्मणीको भूषित करके वह गौ अर्पण करे और नम्रतापूर्वक उनको स्थानमें पहुँचावे ॥ ३० ॥ इस प्रकार करनेसे एक एक पैंडपर सुंदर अश्वमेध

रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रकोविदैः । ततः प्रभातसमये होमं कुर्याद्यथाविधि ॥२९॥ दंपती परिधाप्यैव शुभैर्वस्त्रैः स्वशक्तितः । दद्याद्धेनुं च विप्राय निवेद्य प्रश्रितो व्रजेत् ॥ ३० ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति शोभनम् । अथान्यदपि ते वच्मि इतिहासं पुरातनम् ॥ ३१ ॥ व्याघ्रधेन्वोस्तु संवादं नीतिशास्त्रमयं शुभम् । वसिष्ठस्याश्रमे काचिन्नंदिनीवंशसंभवा ॥ ३२ ॥

यज्ञके फलको प्राप्त होता है इसके विषयमें और भी एक पुरातन इतिहास कहता हूँ सुनो ॥३१॥ जिस इतिहासमें व्याघ्र और धेनुका संवाद है और सुंदर नीतिमय है । वह यह है कि वसिष्ठजीके आश्रममें कोई नंदिनीके वंशमें होनेवाली

धेनु थी। वह ऋषि वशिष्ठजीके तपोबलसे सिंह व्याघ्र आदि जीवोंसे निर्भय हुई स्वेच्छासे चरती हुई गह्वर बनको चली गई ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ आगे चलकर वहां सिंहके पास प्राप्त हुई। यह कौन था ? कि शापसे भ्रष्ट हुआ महाबली बडी डाढोंवाला व्याघ्ररूपी बलवर्द्धन नाम गण था। यह गौको देखकर हाथ फैलाये गौके पास

स्वेच्छया प्रययौ धेनुश्चरन्ती गह्वरं वनम्। सिंहव्याघ्रादिजीवेभ्यो निर्भया सा तपोबलात् ॥३३॥ मुनीश्वरस्य सा धेनुः प्रययौ सन्निधौ हरेः। स च शापपरिभ्रष्टो व्याघ्ररूपी महाबलः ॥३४॥ महादंष्ट्रो महाकायो नाम्नाऽसौ बलवर्द्धनः। प्रसारितकरो दीर्घं आययौ धेनुसंनिधौ ॥ ३५ ॥ धेनुरुवाच ॥ त्वं व्याघ्र कोऽसि चैतद्वै ब्रूहि मे पुरतः स्थितः। नाहं तव हनिष्यामि सत्यं वद शुभाशुभम् ॥ ३६ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ दिवसा बहवो जाताः क्षुधया पीडितस्य मे। अद्यातीष्टा मया प्राप्ता आहाराय प्रकल्पिता ॥३७॥

आया ॥३४॥३५॥ धेनु बोली–रे व्याघ्र ! मेरे आगे खडा हुआ तू कौन है ? सत्य सत्य अपने शुभाशुभ भी बतलादे नहीं तो मैं तुझको नष्ट कर दूँगी ॥३६॥ व्याघ्र बोला कि भूँखसे मरते हुए मेरे बहुत दिन चले गये आज मेरे आहारके लिये कल्पना करी हुई तू अति इष्ट मुझको प्राप्त हुई है ॥ ३७ ॥ धेनु बोली–हे व्याघ्रसत्तम ! वसिष्ठ ऋषिके प्रभावसे महाबली दुष्ट जीवोंसे तो मैं नहीं मर सकती हूं परंतु तेरे स्वरूपको मैं नहीं जानती हूं ॥ ३८ ॥ हे महाबाहो ! मैं एक वृत्तांत तुम्हारे आगे कहती हूं तुम एकाग्र मनसे सुनो कि मैं स्वयं जीवके वशमें हूँ ॥ ३९ ॥ नहीं तो मलमूत्रसे युक्त

धेनुरुवाच ॥ वसिष्ठस्य प्रभावेण दुष्टजीवैर्महाबलैः। नाहं हिंस्या त्वत्स्वरूपं न जाने व्याघ्रसत्तम ॥ ३८ ॥ वाच्यमेकं महाबाहो शृणुष्वैकाग्रमानसः। स्वयं जीववशा चाहं प्रब्रवीमि तवाग्रतः ॥३९॥ अध्रुवेण शरीरेण जलमूत्रयुतेन च। परोपकृतिहीनेन किं कार्यं रक्षितेन हि ॥ ४० ॥ वाङ्मनःकर्मभिर्यत्र शरीरक्लेशतोऽपि वा। उपकारं न कुर्वन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ ४१ ॥

जो यह अध्रुव शरीर है इससे कदाचित् उपकार न होवे तो इसकी रक्षा करनेसे क्या प्रयोजन है ॥ ४० ॥ वाणी मन कर्म और शरीरक्लेश जो इनसे उपकार नहीं करते हैं उनका जन्म निरर्थक है ॥ ४१ ॥

मरणसमयमें भगवान्को छोडकर जो अन्य जगह चित्त लगाता है और रणमें जो दीनवचन कहता है वह मनुष्य तबतक घोर नरकमें वास करता है कि जबतक महाप्रलय होवे ॥ ४२ ॥ स्त्री पुत्र बांधवोंके स्नेहको छोडकर मायासे रहित हुआ जो पुराणपुरुषकी भक्ति करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥४३॥ सात दिनका मेरा बालक

मरणे चान्यचित्तो यो रणे दीनवचो वदेत् । स याति नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवः ॥ ४२ ॥ कलत्रपुत्रबन्धूनां मायारहितमानसः । पुराणपुरुषे भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ४३ ॥ सप्तवासरसंजातो बालो मे च गृहे स्थितः । ममागमनमाकांक्षी तेन दुःखं तु मे हृदि ॥ ४४ ॥ स्वीयदुग्धेन तं बालं स्वेच्छया परिषिच्य च । कथयित्वा वसिष्ठाय आयामि तव सन्निधौ ॥ ४५ ॥

बछडा घरमें है वह दूध पीनेके लिये बाट देखरहा है इसलिये यह दुःख मेरे हृदयमें वर्तता है ॥ ४४ ॥ उस बालक बछडेको अपने दुग्धसे तृप्त करके और वसिष्ठजीको अपना वृत्तांत कहकर तुम्हारे समीप आजाऊंगी ॥ ४५ ॥ व्याघ्र बोला- भूतपूर्व बुद्धिमानोंने कहा है कि प्राण सबसे प्रिय हैं उनके दोषकी शान्तिके लिये मनुष्यसे कुछ भी कहना चाहिये क्योंकि, आपत्में प्राप्त हुआ जंतुकी भी मृत्यु वैरीके समान संगत होती है ॥ ४६ ॥ 'अपनी आत्माकी रक्षा करे' इस कथनके अनुसार मैं करता हूं इसमें संदेह नहीं । ब्रह्माका दिया

व्याघ्र उवाच ॥ वाच्यं तद्दोषशांत्यर्थं प्राणाश्च पूर्वसूरिभिः । आपद्गतश्च यो जंतुर्मृत्यु वैरीव सङ्गतः ॥ ४६ ॥ आत्मानं रक्षते तेन तत्करोमि न संशयः । यस्याग्रे संस्थितं भक्ष्यमादिष्टं परमेष्ठिना ॥ ४७ ॥ न गृह्णाति च यो मन्दस्तस्मान्मूर्खतरश्च कः । न सुरैर्न मनुष्यैश्च न यक्षैर्न निशाचरैः ॥ ४८ ॥ आपत्समोऽन्यमृत्युश्च नैव चेति विनिश्चितम् । जलतृणसमाहारे कृतसन्तोषवर्तिना ॥ ४९ ॥

हुआ भक्ष्य जिसके आगे स्थित है ॥ ४७ ॥ उसको जो मंद नहीं ग्रहण करता है उससे अधिक और मूर्ख कौन है अर्थात् वही महामूर्ख है देवता मनुष्य यक्ष और निशाचार ॥ ४८ ॥ इन सबोंने यही निश्चय किया है

कि आपत्के समान अन्य मृत्यु नहीं है । जल तृणके आहारसे संतोष धारण करके ॥ ४९ ॥ मनुष्य रहजाते हैं फिर पशुओंकी कौन गिनती है इसलिये हे धेनो! तुम प्रतिज्ञा करके चली जाओ कि जिससे तुम्हारे आना हमारे यहाँ निश्चित हो जावे ॥ ५० ॥ अब तुम स्थानमें जाओ और सत्यमें स्थित रहकर फिर तुम आजाओ क्योंकि, पृथ्वी

आपद्गतानां सत्योक्तैः पशूनां चैव का कथा । प्रणान् कृत्वा व्रज त्वं हि यथाभिप्रत्ययो भवेत् ॥ ५० ॥ याहि त्वमधुना स्थाने आगन्तव्यं यथातथम् । पृथिवी च तथाऽऽदित्यः सत्ये तिष्ठंति देवताः ॥५१॥ तस्मात्सत्यं त्वया कार्यं वाक्यं चैवात्र धेनुके । तस्य तद्व चनं श्रुत्वा बालकस्नेहपीडिता ॥ चक्रे तत्र प्रतिज्ञां वै व्याघ्रस्याग्रे पुनः पुनः ॥ ५२ ॥ धेनुरुवाच ॥ द्विजो भूत्वा च यो व्याघ्र वेदभ्रष्टो हि जायते । स्वाध्यायसन्ध्यारहितः सत्यशौचविवर्जितः ॥ ५३ ॥

आदित्य और संपूर्ण देवता सत्यमेंही स्थित हैं ॥ ५१ ॥ हे धेनो ! इसलिये तुम्हें सत्य प्रतिज्ञा करनी चाहिये असत्य भाषण कभी नहीं करना। व्याघ्रका ऐसा वाक्य सुनकर बालबछडेके स्नेहनसे पीडित हुई धेनु व्याघ्रके आगे बारबार प्रतिज्ञा करने लगी ॥ ५२ ॥ धेनु बोली--हे व्याघ्र ! ब्राह्मण होकर जो वेदभ्रष्ट हो और स्वाध्याय संध्यासे रहित हो सत्य शौचसे वर्जित हो ॥ ५३ ॥ बेचना खरीदना करे और याचकोंका भी याचक हो ऐसे ब्राह्मणको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो वापिस फिरिके मैं नहीं आऊं तो ॥ ५४ ॥ पंडित होकर जो मनुष्य दुष्टता तथा धूर्तता करे पाखंडी हो तथा गुरुको ठगनेवाला हो उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो मैं नहीं आऊं तो ॥५५॥

क्रयविक्रयकर्त्ता च याचकानां च याचकः । तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि ॥५४॥ दुष्टो बुधश्च धूर्तो वा पाखण्डी गुरुवंचकः । तेन पा० ॥५५॥ पदं पदेन निर्माति यो वै पादेन क्षालयेत् । तेन पा० ॥५६॥ भर्तारं चार्थहीनं या असूयंति खलाः स्त्रियः । तेन० ॥५७॥ धेनुं विप्रं नरं नारीं यो मारयति दुर्मतिः । तेन० ॥ ५८ ॥

जो पाँवके ऊपर पाँव रखता है और पाँवसे पाँवको धोता है उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझको लगे जो मैं नहीं आऊं तो ॥ ५६ ॥ द्रव्यरहित भर्ताकी निंदा करनेसे जो खोटी स्त्रियोंको पाप लगता वह पाप मुझको लगे जो मैं नहीं आऊं तो ॥ ५७ ॥ गौ ब्राह्मण और पुरुष स्त्री इनके मारनेसे दुर्मतिको जो पाप लगता है वह मुझको लगे

जो मैं नहीं आऊं तो ॥ ५८ ॥ अवैष्णव अर्थात् विष्णुनिंदकको जो पाप लगता है और दंभी पुरुषको जो पाप लगता है वह पाप मुझको लगे जो मैं नहीं आऊं तो ॥५९॥ और इंद्रियोंको लडानेवाला धूर्त तथा दूसरेके दोषोंको कहनेवाला इनको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे लौटकर जो मैं नहीं आऊं तो ॥ ६० ॥ हे व्याघ्र ! जो पुरुष सदा आचारसे रहित होता है और जो सदा दूसरोंको पीडित करता है उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे

अवैष्णवे च यत्पापं यत्पापं दांभिके तथा । तेन पापेन लिप्यामि नाग० ॥५९॥ मुक्तेन्द्रिये च धूर्ते च परदोषापवादके । तेन० ॥ ६० ॥ सदाचारविहीनेषु परपीडाप्रदायके । तेन० ॥ ६१ ॥ सदा पैशुन्यमुक्ते च कन्याविक्रयकारके । तेन० ॥ ६२ ॥ परापदातःसंतुष्टे परदाराभिगामिनि । तेषां च पातकं मह्यं यद्यहं नागमे पुनः ॥ ६३ ॥

जो मैं लौटकर नहीं आऊं तो ॥ ६१ ॥ जो संपूर्ण कालमें सबकी निंदा करता रहता है और जो कन्याका विक्रय (बेचना) करता है उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझको लगे जो मैं लौटकर नहीं आऊं तो ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य दूसरोंकी विपत्तिमें प्रसन्न होता है और जो दूसरोंकी स्त्रियोंमें गमन करता है तब उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो मैं लौटकर नहीं आऊं तो ॥६३॥ ब्रह्महत्यासे मनुष्यको जो पाप लागता है और माता पिताके मारनेमें मनुष्यको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो मैं नहीं आऊं तो ॥६४॥ लोभी मनुष्यको चोरको और विशेष करके म्लेच्छोंको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥६५॥ जो पाप नास्तिक

यत्पापं ब्रह्महत्यायां पितृमातृवधे तथा । तेन० ॥६४॥ यत्पापं लुब्धके चौरे म्लेच्छानां च विशेषतः । तेन० ॥ ६५ ॥ यत्पापं नास्तिकानां च पौराणां विषयैषिणाम् । तेन० ॥ ६६ ॥ द्विभार्यः पुरुषो यस्तु यस्त्वेकां वै विसर्जयेत् । तेन० ॥६७॥ स्वानां चैव बलीवर्दान् विषमान् वाहयेत्तु यः । तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि ॥६८॥

मनुष्योंको लगता है तथा विषयोंमें लगे पुरवासियोंको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥६६॥ दो स्त्रियोंवाले पुरुषको जो एकके त्यागनेमें पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥ ६७ ॥ जो मनुष्य अपने बैलोंको अधिक जोतता है तब उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे

जो मैं नहीं आऊं तो ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य गौवोंका तिरस्कार (ताडना आदि) करते हैं और जो गौवोंको पांवसे ताडते हैं अर्थात् लात मारते हैं तब उनको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो॥६९॥ प्रथम एकबार जो कन्याका दान करके पश्चात् दूसरेको देता है तब उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो

गोष्ववज्ञां च यः कुर्यात्पादेन घ्नन्ति ये नराः । तेन० ॥६९॥ सकृत्कन्यां च यो दत्त्वा द्वितीयं दातुमिच्छति । तेन० ॥ ७० ॥ कथायां कथ्यमानायामन्तरायं करोति यः । तेन० ॥ ७१ ॥ यतिनिंदापरो यस्तु वेदनिंदारतस्तथा । तेन० ॥ ७२ ॥ यस्य संग्रहिणी भार्या ब्राह्मणी च विशेषतः । तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि ॥७३॥

लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥ ७० ॥ कथाके बाँचते हुए बीचमें जो विघ्न करता है तब उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥७१॥ जो मनुष्य संन्यासीकी निंदा करता है और जो मनुष्य वेदकी निंदा करता है तब उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥७२॥ अन्य जातिके मनुष्यको ब्राह्मणी स्त्री बनाकर रखनेमें जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो मैं नहीं आऊं तो ॥७३॥ जो मनुष्य सदा अकर्ममें लगा रहता है क्रूरपना रखता है और कुलधर्ममें वर्जित रहता है तब उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो वापिस मैं नहीं आऊं तो ॥ ७४ ॥ मूर्ख पाखंडी और तिल बेचनेवालेको जो पाप लगता है

अकर्मनिरतः क्रूरः कुलधर्मविवर्जितः । तेन० ॥७४॥ मूर्खे पाखंडके चैव तिलविक्रयकारके । तेन० ॥७५॥ आत्मम्भरा दुराचारा देवद्रव्यापहारकाः । ब्रह्मघ्ना गुर्वभक्ताश्च स्वामिनिंदापरायणाः । ये तेषां पातकं मह्यं नाग० ॥ ७६ ॥ कुरुक्षेत्रे महापर्वे राहुग्रस्ते दिवाकरे । ये गृह्णंति महादानं हव्यकव्यविवर्जिताः ॥ ७७ ॥

वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥ ७५ ॥ अपने आतमाको पोषण करनेवाले दुराचारी देवद्रव्यको हरनेवाले ब्रह्मघ्न गुरुओंके अभक्त और स्वामीकी निंदा करनेवालेको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥ ७६ ॥ कुरुक्षेत्रमें महापर्व विषे तथा सूर्यग्रहण विषे जो महादान ग्रहण करते हैं जो

हवन तथा श्राद्ध कभी नहीं करते हैं ॥७७॥ जो झूठी साक्षी देते हैं जो असत्य भाषण करते हैं परस्त्रीसे गमन करते हैं विश्वासघाती हैं ॥७८॥ रूपयौवनसे गर्वित जो स्त्री द्रव्यहीन एवं महाव्याधिसे पीडित पतिको त्याग देती है शुश्रूषा नहीं करती है इन पूर्वोक्तोंको जो पाप लगते हैं वे संपूर्ण पाप मुझको लगें जो लौटकर मैं नहीं आऊं तो ॥७९॥

कूटसाक्षी मृषाभाषी परद्रव्याभिलाषुकः । परदाराभिगामी च ये च विश्वासघातकाः ॥ ७८ ॥ भर्तारमर्थहीनं च महाव्याधिनिपीडितम् । या न पूजयते नारी रूपयौवन गर्विता ॥ ७९ ॥ अथ किं बहुनोक्तेन व्याघ्रराज तवाग्रतः । यदि नायामि ते गेहे लिप्यामि सर्वपातकैः ॥ ८० ॥ तेन वाक्येन संतुष्टो व्याघ्रोऽपि जातप्रत्ययः । नैव हन्मि निरातङ्का गच्छ धेनो स्वकं गृहम् ॥ ८१ ॥

ह व्याघ्रराज ! अब तुम्हारे आगे बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन है इन पूर्व कहे हुए पापोंसे और अन्य संपूर्ण पापोंसे मैं लिप्त होऊं जो जाकर वापिस नहीं आऊं तो ॥ ८० ॥ धेनुके ऐसे वाक्योंसे प्रसन्न हुआ वह व्याघ्र धेनुवाक्योंपर विश्वास करके गौको कहने लगा कि हे धेनो ! तुम अपने स्थानको जाओ तुझे नहीं मारूंगा ॥ ८१ ॥

इस प्रकार व्याघ्रकी छोडी हुई वह गौ अपने आश्रममें आई और कान उठाये हुए बछडेको देखकर दूध झिराने लगी ॥ ८२ ॥ इस प्रकार दुग्धसे बछडेको संतुष्ट करके सत्यरूपी फांसीमें बँधी हुई उस गौने सखियोंके आगे व्याघ्रका संपूर्ण वृत्तान्त ऐसे कहा ॥ ८३ ॥ हे सखियो ! पूर्व विद्वानोंने सप्तपदी मैत्री कही है । बालपनेसे लेकर

व्याघ्रेण मुक्ता सा धेनुरागता च स्वमाश्रमम् । उत्कर्णं तर्णकं दृष्ट्वा याता प्रस्रवती भृशम् ॥ ८२ ॥ संतोष्य बालं पयसा सत्यपाशेन यंत्रिता । सखीनामग्रतः सर्वं व्याघ्रवृत्तं निवेदितम् ॥८३॥ सख्यः सप्तपदा मैत्री कीर्तिता पूर्वसूरिभिः । बाल्यात्प्रभृति चात्मानं स्नेहपाशेन यंत्रिता ॥ ८४ ॥ अद्यप्रभृति भो सख्यो वात्सल्यं बालके मम । सहैव धार्यं युष्माभिर्बहु किंतु न विद्यते ॥ ८५ ॥ समानवयसः प्राप्तान्मातृस्नेहसमन्वितान् । दृष्ट्वा दुःखसमाविष्टांस्तथेत्युक्ते व्रजामि च ॥ ८६ ॥

आजतक अपना आत्मा मैंने तुम्हारे स्नेहपाशमें बांधा है ॥ ८४॥ हे सखियो ! बहुत क्या कहूं आजसे आगे तुम मेरे इस बालक बछडेकी पालन करना॥८५॥ माताके स्नेहसे युक्त और जो बछडे हैं उनके साथ इसका भी पालन करना

अब तुम्हारे अंगीकार करनेपर मैं जाती हूं ॥ ८६ ॥ हे सखियो ! तुम्हारी आज्ञासे यह सत्य वाक्य मैंने कहा है । अब शीघ्र आज्ञा दो कि जहां वनमें व्याघ्र बसता है वहां मैं जाऊं ॥८७॥ नंदिनीके वंशमें होनेवाली वह धेनु प्रतिज्ञा करके वहां गई यद्यपि व्याघ्र और धेनुका परम वैर विख्यात है कि व्याघ्र गौको भक्षण करही जाता है तो

अनुज्ञया च युष्माकं सत्यवाक्यं समीरितम् । व्रजामि तद्वनं शीघ्रं व्याघ्रो वसति यत्र वै ॥ ८७ ॥ कृतप्रतिज्ञा सा शक्ता नंदिनीवंशसंभवा । व्याघ्रधेन्वोः परं वैरं सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ ८८ ॥ विप्रस्त्रीबालकार्थे तु संप्राप्ते वैरिसङ्कटे । प्राणापहारे मुनिभिर्नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ८९ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ देवेशो न पुनर्व्याघ्रो वृत्रासुररिपुर्बली । मया कृत्वा तथा विष्णोः सख्यं विश्वासनिर्मितम् ॥ ९० ॥

भी धेनु गई ॥ ८८ ॥ और ब्राह्मण स्त्री बालक इनके प्राण बचानेमें तथा संकट प्राप्त होनेमें अपने प्राणोंके जानेमें मुनियोंने असत्यभाषणका दोष नहीं कहा है तथापि धेनु व्याघ्रके समीप प्राप्त हुई ॥८९॥ व्याघ्रने कहा कि हे धेनु ! मैं व्याघ्र नहीं हूँ किंतु वृत्रासुरका शत्रु इंद्र और शिवका गण हूं मैंने विश्वाससे होनेवाली मैत्री दिखाई है ॥९०॥ हे धेनो ? इसलिये परिवारसे युक्त हुई तुम अपने घरमें स्थित होओ और मुनि (वशिष्ठजी) के प्रभावसे कोई वनका दुष्ट जंतु तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करसकेगा ॥ ९१ ॥ क्योंकि सूर्य सत्य करकेही प्रकाश करता है और चंद्रमा सत्य करके ही प्रकाश करता है और समुद्र व नदी सत्य करके ही अपनी सीमाको यथाविधि उल्लंघन नहीं करसकते

ततस्त्वं स्वगृहे तिष्ठ परिवारेण संयुता । मुनिप्रभावाद् दुष्यंति न दुष्टा जंतवः कदा ॥ ९१ ॥ धेनुरुवाच ॥ सत्येन भासतेः भानुः सत्येन तपते शशी । नोल्लंघयति सत्येन सिंधुर्नद्यो यथाविधि ॥ ९२ ॥ सत्याद्ध्रुवश्चिरस्थायी सत्यात्कूर्मो धराधरः । चतुर्मुखोऽपि सत्येन सृजते सकलं जगत् ॥ ९३ ॥ सत्यवाक्याच्च विभ्रष्टो न जीवतु कदाचन । सत्येन सत्यलोकोऽस्ति सत्यं वेदे प्रतिष्ठितम् ॥ ९४ ॥ व्रजामि सत्यवाक्याच्च वने वनचरं प्रति । स्रष्टा सकलजंतूनां गतिं निर्माति शाश्वतीम् ॥ ९५ ॥

हैं ॥९२॥ ध्रुव सत्यसे ही चिरस्थायी हुआ है सत्यसे ही कूर्म पृथ्वीको धारण करता है और सत्यसे ही ब्रह्मा संपूर्ण लोकोंको रचता है ॥ ९३ ॥ सत्यवचनसे भ्रष्ट हुआ कभी मत जीवो । सत्य करके ही सत्यलोक प्रतिष्ठित है और वेद विषे सत्य ही प्रतिष्ठित है ॥ ९४ ॥ इसलिये सत्यवाक्यके कारण मैं वनमें वनचरोंके प्रति जाता हूं क्योंकि

सकल जंतुओंके रचनेवाले ब्रह्माने प्राणियोंकी शाश्वती गति बनायी है ॥ ९५ ॥ ऐसे कहनेसे निर्भय हुई धेनु जब व्याघ्रसे आज्ञा लेकर चली उसी कालमें वरप्रदानसे व्याघ्रको ज्ञान उत्पन्न होगया ॥ ९६ ॥ व्याघ्र विचार करने लगा कि-अहो यह मेरा अतुलभाग्य है कि जो कामधेनुके साथ मेरा समागम हुआ अब इस दुष्टबुद्धिको त्यागकर

इत्युक्ता चलिता धेनुर्व्याघ्रं प्रति च निर्भया । तावद्वरप्रदानाच्च व्याघ्रस्य ज्ञानमागतम् ॥ ९६ ॥ अहो मे भाग्यमतुलं कामधेनुसमागमः । दुष्टबुद्धिविमुक्तोऽहं यास्ये च शिव मन्दिरम् ॥ ९७ ॥ यावत्सा शोकपूर्णा कलिकलुषहरा नागमत्कामधेनुस्तावद्व्याघ्रो विमुक्तः स शशिधरगणो दिव्यदेहं प्रपन्नः । बद्ध्वा पाणी सहर्षो विमलमणिगणैर्दीप्यमानः किरीटी धेनुं भक्त्या विनम्रः सुमधुरवचनैस्तोषयामास सम्यक् ॥ ९८ ॥

मैं शिवमदिरको जाऊँगा ॥ ९७ ॥ कलिपापोंको हरनेवाली शोकपूर्ण वह कामधेनु जबतक अपने स्थानको न प्राप्त हुई तबतक वह महादेवजीका गण व्याघ्रशरीरसे छूटकर दिव्यशरीरको प्राप्त होगया । पश्चात् सुंदर मणिगणोंसे दीप्यमान मुकुट धारण किये प्रसन्न हुआ यह गण हाथ जोडकर भक्तिसे नम्र हुआ मधुर वचनोंसे धेनुकी स्तुति करने लगा ॥९८॥ गण बोला-कामधेनुके प्रसादसे मैं धन्य हूँ कृतकृत्य हूँ । अब संपूर्ण पापोंसे छूटा हुआ मैं महादेवजीके पास जाऊंगा ॥९९॥ पुत्र पौत्रोंको देनेवाली गौवें संपूर्ण कालमें मेरे वर्गकी रक्षा करो ॥ १०० ॥ और अच्छी तरह पूजा की हुई गौवें मुझको बहुत संपत दो। गौवें हमारे संपूर्ण पापोंकी हरनेवाली और संपूर्ण कामफलकी

गण उवाच ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं कामधेनुप्रसादतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो यास्यामि हर संन्निधौ ॥९९॥ गावो रक्षंतु मे वर्गं पुत्रपौत्रप्रदाः सदा ॥१००॥ संपूजिताश्च गावो हि दिशन्तु बहुसंपदः । सर्वपापहरा गावः सर्वकामफलप्रदाः ॥१॥ नमो वः कामधेनुभ्यस्ता पुनन्तु जगत्त्रयम् । यदाधारस्थितं विश्वं नंदिन्यै ते नमो नमः ॥२॥ धेनुरुवाच ॥ महाभाग वरं ब्रूहि जगतां हितकारणम् । यदीच्छसि मनःकाम्यं ददामि तव भक्तितः ॥३॥ गण उवाच ॥ भवत्पूजारता ये च भवत्पूजापरायणाः । तेषां सर्वार्थसिद्धिःस्यात्कामधेनोः प्रसादतः ॥४॥

देनेवाली हों ॥ १०१ ॥ जो तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं उन कामधेनुओंको नमस्कार है नमस्कार है ॥ १०२ ॥ धेनु बोली-हे महाभाग ! वर मांगो । जगत्के हितके लिये जो तुम मनमें करते हो तुम्हारी भक्तिके वशसे मैं वही दूंगी ॥ १०३ ॥ गण बोला-कि तुम गौवोंकी पूजामें जो अनुरक्त हैं और तुम गौवोंकी पूजामें जो तत्पर

हैं उन मनुष्योंको तुझ कामधेनुके प्रसादसे संपूर्ण अर्थोंकी सिद्धि हो ॥ १०४ ॥ इस प्रकार बारंबार कामधेनुकी स्तुति करके गण शिवलोकको चलागया। जो धेनु दुःखितमनवाली हुई आई थी सो प्रसन्नमनवाली हो अपने स्थानको चली गई ॥ १०५ ॥ इस प्रकार इस व्रतसे पूजित हुई कामधेनु महादेवको प्रसन्न करदेती है और स्त्रियोंको

एवं पुनः पुनः स्तुत्वा शिवलोकं ययौ गणः । ययौ धेनुः स्वकं स्थानमायाता रुष्टमानसाः ॥५॥ व्रतेन पूजिता शंभुं तोषयंती सदा स्त्रियः । कामप्रदा कामदुघा पुत्रपौत्रप्रदा सदा ॥ ६ ॥ तासामखंडसौभाग्यं पतिभक्तिं सुनिश्चितम् । ददाति कामधेनुश्च सदा जन्मनि जन्मनि ॥१०७॥ इति श्रीब्रह्मांडपुराणे गोत्रिरात्रव्रतकथा संपूर्णा ॥

संपूर्णकालमें कामनाओंकी देनेवाली और पुत्र पौत्रोंकी देनेवाली होती है ॥ १०६ ॥ और कामधेनु उन स्त्रियोंको जन्म जन्मके विषे अखंड सौभाग्य और पतिमें निश्चल भक्ति देती है ॥ १०७ ॥ इति श्रीब्रह्मांड पुराणे गोत्रिरात्रव्रतमाहात्म्ये भाषाटीका सपूर्णा ॥

इति

गोत्रिरात्रव्रतकथा भाषाटीकासहिता

समाप्ता

अथ

❊ तुलसीत्रिरात्रव्रतकथा भाषाटीकासहिता ❊

प्रारभ्यते ।

अथ तुलसीत्रिरात्रव्रतकथाभाषाटीकाप्रारंभ। सोरठा-तुलसीव्रत जु त्रिरात्र, ताहि कथा भाषा करूं। जो पाके द्विज पात्र, तिनको कस नहिं मोद हो ॥ १ ॥ राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण भगवान्से बोले-हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! आपकी कृपासे मैंने पापोंको नष्ट करनेवाले बहुत व्रत सुना है ॥ १ ॥ परंतु अब मैं वह उत्तम व्रत सुनना चाहता हूँ

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ तुलसीत्रिरात्रव्रतकथा प्रारभ्यते ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन व्रतानि सुबहून्यपि। श्रुतानि देवदेवेश पापक्षयकराणि च ॥ १ ॥ सांप्रतं श्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम्। बहुपापमशेषेण दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ २ ॥ तदस्माकं करुणया ब्रूहि कृष्ण सनातन ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि व्रतं कल्मषनाशनम् ॥३॥ भुवि सौख्यप्रदं पुण्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम्। कृतेन येन विधिना विष्णुलोकान्न मुच्यते ॥ ४ ॥

कि जो बहुत भी पापोंको ऐसे निःशेष दग्ध करदेवे कि जैसे ईंधनोंको अग्नि दग्ध करदेती है ॥ २ ॥ इसलिये हे सनातन ! हे श्रीकृष्ण ! मुझपर दया करके वह व्रत कहो। श्रीकृष्ण बोले-हे राजन् ! पापोंको नष्ट करनेवाला व्रत तुमसे कहूंगा सुनो ॥ ३ ॥ वह पवित्र व्रत पृथ्वीके विषे सुखका देनेवाला है और स्वर्ग तथा मोक्षका देनेवाला है विधिपूर्वक जिस व्रतके करनेसे विष्णुलोकसे वापिस नहीं आता ॥४॥ वह व्रत 'तुलसीत्रिरात्र' नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात है और वही व्रत वशिष्ठजीके वचनसे पहले अरुंधतीने किया है ॥ ५ ॥ और सौभाग्यका करनेवाला वही व्रत इंद्राणी श्रद्धा करके संपूर्ण नागपत्नी और देवपत्नियोंके साथ किया है ॥ ६ ॥ हे पांडव ! महापुण्यफलको

तुलसीत्रिरात्रव्रतं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। वशिष्ठवचनात्पूर्वमरुन्धत्या तथा कृतम् ॥५॥ अवैधव्यं व्रतं चीर्णमिन्द्राण्या श्रद्धया सह। सर्वाभिर्नागपत्नीभिर्देवपत्नीभिरेव च ॥ ६ ॥ तत्तेऽहं कीर्त्तयिष्यामि तुलसीव्रतमादरात्। शृणु पाण्डव यत्नेन महापुण्यफलप्रदम् ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं व्रतं पुरा चीर्णमरुन्धत्या जनार्दन। कथं चैषा समुत्पन्ना तुलसी कृष्णवल्लभा ॥ ८ ॥

देनेवाला वह तुलसीका व्रत मैं तुमसे कहूंगा आदरसे सुनो ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर बोले-हे जनार्दन ! पहले अरुन्धतीने किस प्रकारसे वह व्रत किया है और आपकी वल्लभा तुलसी किस प्रकार उत्पन्न हुई है ॥ ८ ॥

जिस तुलसीका नाम उच्चारण करनेसे ही आप केशव भगवान् प्रसन्न होजाते हैं और जिसका स्पर्श करनेसे कोटि गुण फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ और जिसके दर्शन करनेमें इससे द्विगुण फल है और नमस्कार करनेमें चतुर्गुण फल है । किस उत्तम तिथिमें प्रारंभ करके यह उत्तम व्रत समाप्त किया जाता है ॥ १० ॥ और हे केशव ! यह

नामोच्चारे कृते यस्याः प्रीतो भवति केशवः । स्पर्शनादपि तस्यास्तु फलं कोटिगुणं स्मृतम् ॥९॥ दर्शने द्विगुणं पुण्यं नमस्कारे चतुर्गुणम् । कस्यां तिथौ समारभ्य व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ १० ॥ कतिभिश्च दिनैः पूर्णं तद्व्रतं ब्रूहि केशव । किं दानं किं विधानं च ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥११॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ स्वाश्रमे च समासीनो वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः । अरुधती समागत्य तत्रेदं वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥ अरुन्धत्युवाच ॥ सावित्र्या ब्रह्मवचनात्कृतं तद्व्रतमुत्तमम् । तुलसीत्रिरात्रव्रतं ब्रूह्यशेषेण पुण्यदम् ॥ १३ ॥

व्रत कितने दिनोंमें समाप्त होता है इसमें क्या दान है कैसी विधि है संपूर्ण विशेषतासे कहो ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे राजन् ! एक समय मुनिपुंगव वसिष्ठजी अपने आश्रममें बैठे हुए थे तब अरुंधती समीपमें आकर यह वचन कहनेलगी ॥ १२ ॥ अरुंधती बोली—हे स्वामिन् ! जो तुलसीत्रिरात्र व्रत ब्रह्माजीके वचनसे सावित्रीने किया है वह अशेष पुण्यका देनेवाला उत्तम व्रत मुझसे कहो ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे सती ! संपूर्ण लोकोंके हितके लिये मैं यह व्रत कहता हूं तू एकाग्रचित्त होकर सुन । हे प्रिय ! कार्तिकके शुक्लपक्षमें नवमीसे तीन दिन पर्यंत ॥ १४ ॥ विष्णुभक्तिमें परायण मनुष्य दंतधावनपूर्वक भक्तिसे उपोषण और तुलसीके आगे नियम

वसिष्ठ उवाच ॥ लोकानां तु हितार्थाय शृणु चैकमनाः सति । कार्त्तिकस्यासिते पक्षे नवम्यादिदिनत्रये ॥ १४ ॥ व्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन विष्णुभक्तिपरायणः । त्रिरात्रोपोषणं भक्त्या दन्तधावनपूर्वकम् ॥ १५ ॥ नियमस्तत्र कर्त्तव्यो मंत्रेणानेन सुव्रते । करिष्येऽहं तुलस्यग्रे त्रिरात्रव्रतमुत्तमम् ॥ १६ ॥ दामोदरप्रसादाय परत्रेह सुखाय च । सुखसन्तानसिद्ध्यर्थं सौभाग्यप्राप्तये तथा ॥१७॥ इति नियममंत्रः ॥ ततः पूर्वाह्णसमये स्नानं धात्रीफलैरपि । तिलैस्तुलसिमिश्रैश्च कुर्यात्पापक्षयाय च ॥ १८ ॥

करे ॥ १५ ॥ हे सुव्रते ! प्रथम आगे कहे हुए पौराणिक इस मंत्रसे यह त्रिरात्र उत्तम व्रत मैं करूंगा ॥ १६ ॥ दामोदर भगवान्की प्रसन्नताके लिये और इस लोकमें तथा परलोकमें सुखके लिये और सुखसंतानकी सिद्धिके लिये तथा सौभाग्यप्राप्तिके लिये ॥ १७ ॥ इति नियममंत्र । उसके अनंतर संपूर्ण पापोंके नाशके लिये तिल

और तुलसी मिलाकर आंवलोंसे पूर्वाह्णसमयमें स्नान करे ॥१८॥ उसके अनंतर तुलसीके आगे जाकर वहां वेदी बनावे और वहां लक्ष्मी नारायणकी सुंदर मूर्तियाँ स्थापन करे ॥१९॥ सुवर्णकी मंजरीसे युक्त सुवर्णकी तुलसीकी मूर्ति यथा शक्ति बनवावे ॥२०॥ उसको पंचामृतसे स्नान कराकर सफेद वस्त्र ओढावे और गंधसे चर्चित करके दिव्यधूपसे वासित

ततो गत्वा तुलस्यग्रे वेदिं तत्र च कारयेत् । लक्ष्मीनारायणं देवं न्यसेत्तत्र सुशोभनम्
॥ १९ ॥ सौवर्णं तु यथाशक्त्या तुलसीसंयुतं शुभम् । तुलसीं कारयेत्तत्र स्वर्णमंजरि
संयुताम् ॥ २० ॥ वस्त्रैराच्छादयेच्छुभ्रैर्दिव्यधूपादिवासितम् । दिव्यगंधानुलिप्तां तु
स्नात्वा पंचामृतैस्तथा ॥ २१ ॥ कृष्णानद्यां सुपतितां क्षीरोदजलमध्यतः । ततोत्पन्नां
तु तुलसीं शिरसा विष्णुना धृताम् ॥२२॥ पवित्रत्वं तदा प्राप्तां वंदितां देवदानवैः । तामपि
स्थापयेत्तत्र वस्त्रालंकारभूषिताम् । प्रतिष्ठां कारयेत्पश्चाद्वेदोक्तविधिना तदा ॥ २३ ॥

करे ॥२१॥ कृष्णानदीमें पडीहुई क्षीरससुद्रमें उत्पन्न हुई तुलसी विष्णुने अपने मस्तकपर धारण की है ॥२२॥ पवित्रताको प्राप्त और देवदानवोंसे नमस्कृत उस तुलसीको वहां स्थापन करके पश्चात् वेदोक्तविधिसे प्रतिष्ठा करावे ॥२३॥
उसके अनंतर पौराणिक शुभमंत्रोंद्वारा तुलसीकी पूजा करे और भक्तिभावसे लक्ष्मीनारायणदेवकी पूजा करे ॥ २४ ॥
हे दामोदर ! हे सुरपूजित ! क्षीरोदलजलसे उत्पन्न हुआ और तुलसीसे मिश्रित हुआ आप यह पवित्र चंदन ग्रहण करो

ततः पूजा प्रकर्तव्या मंत्रैः पौराणिकैः शुभैः । लक्ष्मीनारायणं देवं पूजयेद्भक्तिभावतः
॥२४॥ क्षीरोदजल उत्पन्न दामोदर सुरार्चित । विलेपनमिदं पुण्यं गृहाण तुलसीयुतम्
॥२५॥ कृष्णानद्यां सुसंभूते सदैव भगवत्प्रिये । युक्ताऽच्युतेन तुलसि गृहाणेदं विलेपनम्
॥ २६ ॥ इति गन्धम् ॥ दामोदर जगन्नाथ श्रीनाथासुरसूदन । तुलस्या सहितो देव
पुष्पाणि प्रगृहाण मे ॥२७॥ इति पुष्पम् ॥ वनस्पतिरसोद्भूतः सुगंधाढ्यो मनोरमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ २८ ॥ इति धूपम् ॥

॥२५॥ कृष्णानदीमें उत्पन्न हुई सदा भगवान्की पियारी हे तुलसी ! अच्युत भगवान् सहित तुम यह चंदन ग्रहण करो ॥२६॥ इति गंध ॥ हे दामोदर ! हे जगन्नाथ ! हे श्रीनाथ ! हे असुरसूदन ! हे देव ! तुलसीसहित आप मेरे पुष्प ग्रहण करो ॥२७॥ इति पुष्प ॥ हे भगवन् ! वनस्पतिरससे उत्पन्न हुआ सुगंधिसे युक्त मनोरम और संपूर्ण देवताओंके

सूँघने योग्य यह धूप आप ग्रहण करो ॥ २८ ॥ इति धूप ॥ हे केशव ! अन्धकारके नाशके लिये ज्योति होती है इसलिये स्वर्ण अथवा रूपेका यह पात्र तिलतैलसे पूर्ण करके दीपरूप आपके आगे अर्पण करता हूँ आप ग्रहण करो ॥ २९ ॥ इति दीप ॥ इस प्रकार पूजन करके पश्चात् अनेक प्रकारका नैवेद्यका सवाया उत्तम भक्ष्य बनाकर

ज्योतिस्तमोविनाशाय पात्रं च स्वर्णरुक्मकम् । तिलतैलेन संयुक्तं दीपं गृह्णातु केशवः ॥२९॥ इति दीपम् ॥ नैवेद्यं विविधं दद्यात्सपादं भक्ष्यमुत्तमम् । आरार्तिकं प्रकर्तव्यं ततश्चार्घ्यं प्रदापयेत् ॥३०॥ नारिकेललवङ्गैश्च जातीफलसमन्वितम् । पंचरत्नसमोपेतं शंखे कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ३१ ॥ संकल्प्य देयं तच्चार्घ्यं प्रणिपत्य सुभक्तितः । मनसा चिंतयेद्देवं दामोदरमतंद्रितः ॥ ३२ ॥ नित्यमेव प्रकर्त्तव्यं दानं विभवसारतः । तांबूलं फलदानं च आत्मनः शुभमिच्छता ॥ ३३ ॥

अर्पण करे और आरती करके अर्घ्यप्रदान करे ॥ ३० ॥ नारियल लवंग और जायफलसे युक्त पंचरत्न यत्नसे शंखमें स्थापन करके ॥ ३१ ॥ भक्तिसे नम्र हुआ मनुष्य संकल्प कर अर्घ्य अर्पण करे पश्चात् सावधान हुआ मनुष्य मनसे दामोदर भगवान्का ध्यान करे ॥ ३२ ॥ नित्यही अपने शुभकी इच्छा करता हुआ मनुष्य तांबूल और फल अर्पण करे और अपने द्रव्यके अनुसार दान करे ॥ ३३ ॥ भक्तिपूर्वक कीर्तन आदिसे रात्रिमें जागरण करे और भगवान् विष्णुका और तुलसीका चरित वर्णन करे ॥ ३४ ॥ तीन दिन इस प्रकारसे विधि करनी । उसके अनंतर फिर द्वादशीके दिन विष्णुदेव और तुलसीके आगे हस्तप्रमाणका कुंड बनावे ॥ ३५ ॥ तीन मेखला बनावे और

रात्रौ जागरणं कार्यं भक्त्या गानविनोदतः । चरितं देवदेवस्य तुलस्याख्यानमेव च ॥३४॥ एवं हि त्रिदिनं कार्यं द्वादश्यां च ततः परम् । देवस्य च तुलस्यग्रे कुण्डं हस्तप्रमाणतः । ॥ ३५ ॥ कार्यं त्रिमेखलं चैव पश्चिमादिशि शोभनम् । विष्णुमंत्रेण कर्त्तव्यो होमश्चैव तिलैर्युतः ॥ ३६ ॥ सहस्रं होमयेत्तत्र अथवाऽष्टाधिकं शतम् । वैष्णवेन तु मंत्रेण कुर्याद्विधिविधानतः ॥३७॥ षड्तौ तु प्रकर्तव्यं ब्रह्मचर्यसमन्वितः । त्रिकुंभं सजलान्नं च ब्राह्मणत्रयभोजनम् ॥ ३८ ॥ विधिवद्दीयते दानं दामोदरः प्रसीदतु ॥ ३९ ॥

पश्चिमदिशामें विष्णुमंत्रद्वारा तिलोंसे हवन करे ॥ ३६ ॥ एक सहस्र आहुतियाँ देवे अथवा एक सौ आठ आहुतियाँ देवे । विधिविधानसे वैष्णवमन्त्रसे हवन करे ॥ ३७ ॥ ब्रह्मचर्यसे युक्त मनुष्य छः ऋतुओंमें इस प्रकारकी विधि करे और तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराके जल और अन्नसहित तीन कलश देवे ॥ ३८ ॥ और ऐसा कहे कि

विधिपूर्वक जो यह दान किया जाता है इससे दामोदर भगवान् प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ पश्चात् सफेद वस्त्र सुंदर खांडसे भराहुआ काँसीका पात्र और तांबेका पात्र और उपस्करसहित दुग्ध और बछडेवाली धेनु ये इतनी वस्तुएँ केशव भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये दान करे ॥ ४० ॥ पश्चात् इक्षु (गन्ना) के सहित ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन

वासांसि शुक्लानि च कांस्यपात्रं सताम्रपात्रं शुभखंडपूर्णम् । धेनुं सवत्सां च पयस्विनीं च सोपस्करां केशवतुष्टिहेतवे ॥ ४० ॥ विप्रेभ्यो भोजनं देयं मिष्टान्नमिक्षुभिः सह । तेभ्यो हि दक्षिणां दद्यात्तुलसीविष्णुहेतवे ॥ ४१ ॥ विवाहं कारयेत्तत्र तुलस्यग्रे समाहितः । आचार्यं च सपत्नीकं परिधाप्य विधानतः ॥ ४२ ॥ एतद्व्रतं भाद्रपदे वैशाखे चैव भूपते । कर्त्तव्यं कार्त्तिके मासे शुक्लपक्षे समाहितः ॥ ४३ ॥

देवे और तुलसी तथा विष्णु भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देवे ॥ ४१ ॥ सपत्नीक आचार्यको विधानसे वस्त्र पहराकर भगवान् और तुलसीका विवाह करावे ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! सावधान हुआ मनुष्य इस व्रतको भाद्रपद वैशाख तथा कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें करे ॥ ४३ ॥ उसके अनंतर शास्त्रके निश्चयवाला ब्राह्मण स्त्री गणसे युक्त हुआ प्रातःकाल पूजादिक क्रिया करके ॥ ४४ ॥ दामोदर भगवान्‌से युक्त तुलसीदेवीका पूजन करे इस प्रकार विधानसे पूजन करके प्रत्यक्ष क्षमापन करावे ॥ ४५ ॥ पश्चात व्रतकी पूर्णताके कारण ब्राह्मणका वचन लेकर तुलसी

ततः प्रभातसमये कृत्वा पूजादिकाः क्रियाः । स्त्रीगणेन समायुक्तो ब्राह्मणः शास्त्रनिश्चयः ॥ ४४ ॥ पूजयेत्तुलसीं देवीं दामोदरसमन्विताम् । पूजयित्वा विधानेन प्रत्यक्षं च क्षमापयेत् ॥४५॥ ततो विप्रमनुज्ञाप्य व्रतसंपूर्णहेतवे । इदमुच्चारयेत्तत्र प्रणम्य तुलसीं हरिम् ॥ ४६ ॥ जानताऽजानता वापि कृतं न्यूनाधिकं तु यत् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु युवयोस्तु प्रसादतः ॥ ४७ ॥

और हरिभगवान्‌को नमस्कार करके इस प्रकार उच्चारण करे ॥ ४६ ॥ जानते हुए अथवा नहीं जानते हुए मैंने जो कुछ न्यूनाधिक भाव (पूजा) किया है वह संपूर्ण आपके प्रसादसे पूर्ण होजावे ॥ ४७ ॥

पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार स्त्रियोंको, संन्यासियोंको भगवद्भक्तोंको, और दीन तथा अंधोंको भोजन करावे॥४८॥ उसके अनंतर कुटुंबसहित स्वयं पारण करे। हे राजन् ! नर अथवा नारी जो ऐसी विधि करता है उसके पुण्यका फल श्रवण करो ॥ ४९ ॥ इस व्रतको करनेवाले स्त्री वा पुरुषको कभी कष्ट नहीं होता है, पीडा नहीं होती है, दारिद्र्य

नारीणां भोजनं देयं यथाशक्त्यनुसारतः । यतीन् भागवतांश्चैव दीनानन्धांश्च तर्पयेत्
॥ ४८ ॥ पारणं च ततः कुर्यात्कुटुंबेन समन्वितः । नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्य
फलं शृणु ॥ ४९ ॥ न तस्य कष्टं नैवार्तिर्न दारिद्र्यं न वंध्यता । विष्णुलोकमवाप्नोति
कुलमुद्धारयेच्छतम् ॥ ५० ॥ नैवात्र दृश्यते किंचिद्व्रतं पावनपावनम् । सावित्र्या च
कृतं पूर्वं ब्रह्मवाक्येन भूपते ॥५१॥ तुलसीत्रिरात्रमेतद्व्रतं कृत्वा विधानतः । समीहित
फलं प्राप्य तपसां च समृद्धये ॥ ५२ ॥

नहीं होता है और वंध्यापन नहीं होता है। इस व्रतको करनेवाला पुरुष अथवा स्त्री स्वयं विष्णुलोकको प्राप्त होता है और अपने सौ कुलोंका उद्धार करता है ॥ ५० ॥ पवित्रोंसेभी पवित्र ऐसा और कोई यहां व्रत देखनेमें नहीं आता है। हे भूपते ! पहले यही व्रत ब्रह्माजीके कहनेसे सावित्रीने किया है ॥ ५१ ॥ फिर वसिष्ठजी कहने लगे कि, यह तुलसी त्रिरात्रव्रत विधानसे करके मनुष्य वांछित फलको प्राप्त होता है। और इससे तपोंकी समृद्धि होती है, सुख संतानकी वृद्धि होती है। इस व्रतको एकाग्रमनसे कर। श्रीकृष्ण बोले–अरुंधती देवी भक्तिपूर्वक वसिष्ठजीके ऐसे वचन सुनकर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अरुंधती इस श्रेष्ठ व्रतको इस प्रकार विधिपूर्वक की। यह अनुत्तम व्रत पहले इस प्रकार

धनसंतानसिद्ध्यर्थं कुरुष्वैकमनाः सति ॥ कृष्ण उवाच ॥ श्रुत्वा वसिष्ठवचनं भक्त्या
देवी ह्यरुन्धती ॥५३॥ व्रतं चकार विधिवत्सर्वं पापहरं परम् । एवं कृतमरुन्धत्या पूर्वं
व्रतमनुत्तमम् ॥ ५४ ॥ कुरुष्वाथ महाराज वसिष्ठवचनं यथा । श्रुत्वा कृष्णमुखात्सर्वं
चकार भूपसत्तमः ॥ ५५ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या एतन्मे व्रतमुत्तमम् । सर्वपापविनि
र्मुक्तः सः याति परमां गतिम् ॥ ५६ ॥

अरुंधतीने किया है ॥ ५४ ॥ हे महाराज (युधिष्ठिर) ! वसिष्ठजीके वचनोंके अनुसार आपभी इस व्रतको करो राजाओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण भगवान्‌के मुखसे ऐसे वचन श्रवण करके व्रतकी संपूर्ण विधि वैसेही किये ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य इस मेरे उत्तम व्रतको भक्तिसे करता है वह संपूर्ण पापोंसे छूटकर परमगतिको

प्राप्त हो जाता है ॥ ५६ ॥ और वह मनुष्य इक्कीस युगों पर्यंत स्वर्गलोकमें बसता है पश्चात् भूमिमें आकर यज्ञ करनेवाला राजा होता है ॥ ५७ ॥ हे राजन् युधिष्ठिर ! जो तुमने पूछा था वह यह उत्तम व्रत संपूर्ण प्रकारसे मैंने कहा है यह उत्तम व्रत भगवान् विष्णुकी प्रसन्नता करनेवाला है और स्वर्ग तथा मोक्षको देनेवाला है ॥ ५८ ॥

स्वर्गलोके वसेत्सोऽपि युगानामेकविंशतिम् । ततो भुवं समासाद्य यज्ञी राजा भविष्यति ॥५७॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं पृच्छतस्ते युधिष्ठिर । विष्णोस्तुष्टिकरं चैव स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ ५८ ॥ ये मानवा भक्तियुताश्च राजञ्जितेन्द्रिया विष्णुपरायणाश्च । कृतोपवासास्तुलसीव्रताख्यं कुर्वंति ते विष्णुपदं व्रजंति ॥ ५९ ॥ इति मथुराखण्डे तुलसीत्रिरात्रव्रतकथा समाप्ता ॥

हे राजन् ! भक्तिसे युक्त जितेंद्रिय विष्णुपरायण और किये हैं उपवास जिन्होंने ऐसे मनुष्य जो तुलसीत्रिरात्र नामवाला व्रत करते हैं वे विष्णुपदको प्राप्त होते हैं ॥५९॥ इति मथुराखंडे तुलसीत्रिरात्रव्रतकथाभाषाटीका समाप्ता ॥

इति

तुलसीत्रिरात्रव्रतकथा भाषाटीकासहिता

समाप्ता ।

अथ

❋ वटसावित्रीव्रतकथा भाषाटीकासहिता ❋

प्रारभ्यते ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ वटसावित्रीव्रतकथाभाषाटीकाप्रारंभः ॥ दोहा–वंशीवट प्रिय जाहिसो; वंशीधर नन्दलाल वटसावित्रीकी कथा, करिहैं कस न रसाल ॥ १ ॥ सनत्कुमार बोले-हे महादेव ! कुलस्त्रियोंके महाभाग्यको बढानेवाला अखंड सौभाग्यको करनेवाला और पुत्र पौत्रोंको देनेवाला व्रत मुझको कहो ॥ १ ॥ ईश्वर

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ वटसावित्रीव्रतकथाप्रारंभः ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ कुलस्त्रीणां व्रतं देव महाभाग्यं वद प्रभो । अवैधव्यकरं स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रदायकम् ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा ज्ञानी परमधार्मिकः । नाम्ना चाश्वपतिर्वीरो वेदवेदांगपारगः ॥ २ ॥ अनपत्यो महाबाहुः सर्वैश्वर्यसमन्वितः । सपत्नीकस्तपस्तेपे समाराधयते नृपः ॥ ३ ॥

बोले–हे सनत्कुमार ! मद्रदेशमें धर्मात्मा ज्ञानी परमधार्मिक वीर और वेदवेदांगका पारगामी एक अश्वपति नामवाला राजा हुआ ॥ २ ॥ संपूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त होनेपर भी यह महाबाहु संतान नहीं होनेके कारण रानीके सहित तप करने लगा ॥ ३ ॥ यह महामना (उदारचित्त) संपूर्ण कामनाओंको देनेवाली सावित्रीका जप करनेलगा और सावित्रीका ही परमभक्तिसे हवन करनेलगा ॥ ४ ॥ हे द्विजसत्तम ! उसके अनंतर प्रसन्न हुई वह सावित्री देवी मूर्त्तिको धारण करके उस राजाके प्रत्यक्ष आगई ॥ ५ ॥ वह कैसी कि भूर्भुवःस्व इनको उच्चारण करतीहुई और

सावित्रीं च प्रसावित्रीं जपन्नास्ते महामनाः । जुहोति चैव सावित्रीं भक्त्या परमया युतः ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टा तु सावित्री सा देवी द्विजसत्तम । सा विग्रहवती देवी तस्य दर्शन मागताः ॥ ५ ॥ भूर्भुवःस्वरवत्येषा साक्षसूत्रकमण्डलुः । तां तु दृष्ट्वा जगद्वंद्यां सावित्रीं च द्विजोत्तम ॥ ६ ॥ अनमच्च नृपो भक्त्या प्रहृष्टेनांतरात्मना । तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ तुष्टा देवी जगाद ह ॥ ७ ॥

रुद्राक्ष सूत्र कमंडलु आदिको धारण किये । हे द्विजोत्तम ! यह अश्वपति राजा ऐसी जगद्वंद्य इस सावित्रीको देख कर ॥ ६ ॥ प्रसन्न हुए अंतरात्मासे भक्तिकरके साष्टांग नमस्कार किया पश्चात् सावित्री देवी राजाको इस

प्रकार पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुई और वचन कहनेलगी ॥ ७ ॥ सावित्री बोली--हे राजेंद्र ! हे सुव्रत ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हुई हूँ तुम वर मांगो । सावित्रीसे ऐसा कहाहुआ राजा प्रसन्न हुई उस सावित्रीको कहनेलगा ॥ ८ ॥ अश्वपति बोला--हे देवी ! मैं सन्तानरहित हूं इसलिये आपसे सुन्दर पुत्रकी इच्छा

सावित्र्युवाच ॥ तुष्टाऽहं तव राजेंद्र वरं वरय सुव्रत । एवमुक्तस्तया राजा प्रसन्नां तामुवाच ह ॥८॥ अश्वपतिरुवाच ॥ अनपत्योऽस्म्यहं देवि पुत्रमिच्छामि शोभनम् । नान्यं वृणोमि सावित्रि पुत्रोत्पत्तेर्जगन्मयि ॥ ९ ॥ अन्यदस्ति समग्रं मे क्षितौ यच्चापि दुर्लभम् । प्रसादात्तव देवेशि तत्सर्वं विद्यते गृहे ॥ १० ॥ एवमुक्ता तु सा देवी प्रत्युवाच नराधिपम् ॥ सावित्र्युवाच ॥ पुत्रस्ते नास्ति राजेंद्र कन्यैका ते भविष्यति ॥ ११ ॥

करता हूं । हे सावित्री ! हे जगन्मयी ! मैं अन्य वर नहीं मांगता हूं केवल पुत्र ही वर मांगता हूं ॥ ९ ॥ हे देवेशि ! पृथ्वीमें जो दुर्लभ है संपूर्ण ही आपके प्रसादसे मेरे घरमें स्थित है एक पुत्रके विना ॥ १० ॥ ऐसे कही हुई वह सावित्री देवी राजाको कहनेलगी । सावित्री बोली हे राजेंद्र ! तेरे प्रारब्धमें पुत्र नहीं है, हां एक कन्या आपको होगी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! वह भामिनी ऐसी प्रतापवती होगी कि दोनों कुलोंका उद्धार करेगी और हे राजशार्दूल ! मेरे नामसे ही उस कन्याका नाम (सावित्री) होगा ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्माकी प्रिया (सावित्री) देवी उस राजाको ऐसे कहकर अंतर्धानको प्राप्त होगई और राजा ऐसे वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १३ ॥

कुलद्वयं तु सा राजन्नुद्धरिष्यति भामिनी । मन्नाम्ना राजशार्दूल तस्या नाम भविष्यति ॥१२॥ इत्युक्त्वा तं मुनिश्रेष्ठ राजानं ब्रह्मणः प्रिया । अंतर्धानं गता देवी संतुष्टोऽसौ महीपतिः ॥ १३ ॥ ततः कतिपयाहोभिस्तस्य राज्ञी महीभुजः । ससत्त्वा समजायेत पूर्णे काले सुषाव ह ॥ १४ ॥ सावित्र्या तुष्टया दत्ता सावित्र्या जप्तया तथा । सावित्री तेन वरदा तस्या नाम बभूव ह ॥ १५ ॥

उसके अनंतर कितनेक दिन व्यतीत होनेपर राजा अश्वपतिकी रानी गर्भवती होगई पश्चात् काल पूर्ण होनेपर कन्याका जन्म हुआ ॥ १४ ॥ सावित्रीके प्रसन्न होकर वर देनेके कारण और सावित्रीके जपसे लब्ध होनेके कारण उसका

सावित्री नाम रक्खा ॥ १५ ॥ कमल सरीखे नेत्रोंवाली वह कन्या देवकन्याओंके समान शोभा पानेवाली और हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसे बढनेलगी कि जैसे आकाशमें चंद्रमाकी कला बढती है ॥ १६ ॥ ब्रह्माकी प्रिया सावित्रीकी तरह और विष्णुकी प्रिया बडे नेत्रोंवाली लक्ष्मीकी तरह उस सुवर्ण कांतिवाली कन्याको देखकर राजा बडी चिंताको

राजते देवगर्भाभा कन्या कमललोचना । ववृधे सा मुनिश्रेष्ठ चन्द्रलेखेव चाम्बरे ॥१६॥ सावित्री ब्रह्मणो वै सा श्रीरिवायतलोचना । तां दृष्ट्वा हेमगर्भाभां राजा चिंतामुपेयिवान् ॥ १७ ॥ अयाच्यमानां च वरै रूपेणाप्रतिमां भुवि । तस्या रूपेण ते सर्वे सन्निरुद्धा महीभुजः ॥ १८ ॥ ततः स राजा चाहूय उवाच कमलेक्षणाम् । पुत्रि प्रदानकालस्ते न च याचंति केचन ॥ १९ ॥ स्वयं वरय दृष्टं ते पतिं गुणसमन्वितम् । मनःप्रह्लादनकरं शीलेनाभिजनेन च ॥ २० ॥

प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ सावित्रीके रूपसे संपूर्ण राजा ऐसे धर्षित हुए कि कोई भी वर आकर याचना नहीं करता था ॥ १८ ॥ उसके अनंतर कमलसरीखे नेत्रोंवाली अपनी कन्याको बुलाकर कहने लगा कि हे पुत्री ! तुम्हारा प्रदानकाल (विवाहसमय) आरहा है परंतु कोई राजकुमार तुम्हारी याचना नहीं करता ॥ १९ ॥ इसलिये अब मैं स्वयंवर करता हूं सर्वगुणोंसे युक्त सुंदर पतिको तू आप वरले परंतु वह पति कैसा हो कि शील और कुल करके मनको प्रसन्न करनेवाला हो ॥ २० ॥ यह राजेंद्र सावित्रीको ऐसा कहकर वृद्धमंत्रियोंसहित वस्त्र अलंकारोंसे युक्त और धन रत्नोंसे युक्त उस सावित्रीको ॥ २१ ॥ क्षणमात्रमें विसर्जन करके जबतक स्थित हुआ तबतक भगवान् नारद ऋषि

इत्युक्त्वा तां च राजेंद्रो वृद्धामात्यैः सहैव च । वस्त्रालंकारसहितां धनरत्नैः समन्विताम् ॥ २१ ॥ विसृज्य च क्षणं तत्र यावत्तिष्ठति भूमिपः । तावत्तत्र समागच्छन्नारदो भगवानृषिः ॥ २२ ॥ अपूजयत्ततो राजा अर्घ्यपाद्येन तं मुनिम् । आसने च सुखासीनः पूजितस्तेन भूभुजा ॥ २३ ॥ पूजयित्वा मुनिं राजा प्रोवाचेदं द्विजोत्तमम् । पावितोऽहं त्वया विप्र दर्शनेनाद्य नारद ॥२४॥ यावदेवं वदेद्राजा तावत्सा कमलेक्षणा । आश्रमादागता देवी वृद्धामात्यैः समन्विता ॥ २५ ॥

आगये ॥२२॥ राजा अश्वपतिने सुखपूर्वक नारदऋषिकी पूजा की और अर्घ्य पाद्य प्रदान किये ॥२३॥ मुनिकी पूजा करके राजा उस द्विजोत्तमको यह कहनेलगा कि हे विप्र ! हे नारद ! आज आपने दर्शन देकर मुझे पवित्र करदिया॥२४॥ राजा इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतनेमें यह कमलोचना सावित्री देवी वृद्ध मंत्रियोंसे युक्त हुई आश्रमसे बाहर

आई ॥ २५ ॥ और प्रथम पिताके चरणोंको प्रणाम करके पश्चात् मुनिके चरणोंको प्रणाम किया। पश्चात् नारद मुनिने वह सावित्री देखी और देखकर राजासे वचन कहने लगे ॥ २६ ॥ हे महाबाहो! देवकन्याओंके सदृश इस सावित्री कन्याको वरको क्यों नहीं देते हो, क्योंकि जिससे यह सुंदरी वरके योग्य हो रही है ॥ २७ ॥ जब उस

अभिवाद्य पितुः पादौ ववंदे सा मुनिं ततः। नारदेन तु दृष्टा सा दृष्टा प्रोवाच भूमिपम् ॥ २६ ॥ कन्यां च देवगर्भाभां किमर्थं न प्रयच्छसि। वराय त्वं महाबाहो वरयोग्यां हि सुन्दरीम् ॥२७॥ एवमुक्तस्तदा तेन मुनिना नृपसत्तमः। उवाच तं मुनिं वाक्यमनेनार्थेन प्रेषिता ॥ २८ ॥ आगतेयं विशालाक्षी मया संप्रेषिता सती। अनया च वृतो भर्त्ता पृच्छ त्वं मुनिसत्तम ॥ २९ ॥

कालमें उस मुनिने राजासे ऐसा कहा तब यह नृपसत्तम मुनिको कहने लगे कि हे मुने! मैंने यह इसी अभिप्रायसे भेजी है कि तू स्वयं वरको देखले ॥ २८ ॥ अब यह विशालाक्षी मेरी प्रेरी हुई आई है हे मुनिसत्तम! अब आप इससे पूछिये कि इसने कोई राजकुमार भर्ता वरा है क्या? ॥ २९ ॥ मुनिने पूछी हुई भामिनी उनसे कहने लगी। सावित्री बोली--हे मुने! आश्रममें द्युमत्सेनका पुत्र सत्यवान् नामवाला है हे विप्र! वह राजनंदन मैंने भर्तापनके लिये वरा है ॥ ३० ॥ नारदमुनि बोले- हे महाराज! हे सुव्रत! आपकी पुत्रीने बडा कष्ट (आश्चर्य)

सा पृष्टा तेन मुनिना तस्मै चाचष्ट भामिनी ॥ सावित्र्युवाच ॥ आश्रमे सत्यवान्नाम द्युमत्सेनसुतो मुने ॥ ३० ॥ भर्तृत्वेन मया विप्र वृतोऽसौ राजनंदनः ॥ नारद उवाच ॥ कृतं कष्टं महाराज दुहित्रा तव सुव्रत ॥ ३१ ॥ अजानत्या वृतो भर्त्ता गुणवानिति विश्रुतः। सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते ॥ ३२ ॥ स्वयं सत्यं प्रभाषेत सत्यवानीति तेन सः। तथा चाश्वाः प्रियास्तस्य ह्यश्वैः क्रीडति मृन्मयैः ॥ ३३ ॥

किया है कि ॥ ३१ ॥ नहीं जानती हुई इस सावित्रीने ऐसा गुणवान् विख्यात भर्ता वरा है। इस सत्यवान्का पिता नित्य सत्य भाषण करता है और माता भी सत्य भाषण करती है ॥ ३२ ॥ और वह राजकुमार स्वयं सत्यभाषण करता है इसीलिये उसका सत्यवान् नाम है और अश्व उसको प्रिय है इसी लिये मिट्टीके अश्व करके क्रीडा

करता है ॥३३॥ और अश्वोंके ही चित्र लिखता है इसी लिये उसको चित्राश्व कहते हैं। वह राजकुमार रूपवान् है गुणवान् है और संपूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला है ॥३४॥ हे राजन्! उसके सदृश्य यहां लोकमें अन्य मनुष्य नहीं है वह संपूर्ण गुणोंसे ऐसे संपन्न है जैसे रत्नों करके महार्णव ॥३५॥ परंतु एक महान् दोष इसको आवरण करके स्थित है

चित्रेऽपि विलिखत्यश्वांश्चित्राश्वस्तेन चोच्यते। रूपवान् गुणवांश्चैव सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३४ ॥ न तस्य सदृशो लोके विद्यते चेह मानवः। सर्वैर्गुणैश्च संपन्नो रत्नैरिव महार्णवः ॥ ३५ ॥ एको दोषो महानस्य गुणानावृत्य तिष्ठति। संवत्सरेण क्षीणायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥ ३६ ॥ अश्वपतिरुवाच ॥ अन्यं वरय भद्रं ते वरं सावित्रि गम्यताम्। विवाहस्य तु कालोऽयं वर्तते शुभलोचने ॥ ३७ ॥

वह यह कि एक वर्षकी ही आयु शेष रहनेसे वह क्षीण आयुवाला है। वर्षके अंतमें वह शरीरका त्याग करदेगा ॥ ३६ ॥ ऐसा सुनकर राजा अश्वपति बोला-हे सावित्री! 'ते भद्रम्' तेरा कल्याण हो इसमें तो यह क्षीणायुका दोष है इस लिये कोई दूसरा वर वरो क्योंकि जिससे हे शुभलोचने! तुम्हारा विवाहका समय वर्तता है ॥ ३७ ॥

सावित्री बोली-हे तात (हे पिता)! हे प्रभो! अन्य वरकी मैं मनसे भी इच्छा नहीं करती हूं जो मैंने भर्त्ता वरा है वही मेरा भर्त्ता है अन्य नहीं होगा ॥ ३८ ॥ प्रथम मनसे विचार कर पश्चात् वाणीसे उच्चारण करे और शुभ हो अथवा अशुभ हो पीछे उस कार्यको करे इस लिये मनसे भी अन्य पुरुषको मैं कैसे वर सकती हूं? ॥ ३९ ॥

सावित्र्युवाच ॥ नान्यमिच्छाम्यहं तात मनसाऽपि वरं प्रभो। यो मया च वृतो भर्त्ता स मे नान्यो भविष्यति ॥ ३८ ॥ विचिंत्य मनसा पूर्वं वाचं पश्चात्समुच्चरेत्। क्रियते च ततः पश्चाच्छुभं वा यदि वाऽशुभम्। तस्मात्पुमांसं मनसा कथं चान्यं वृणोम्यहम् ॥ ३९ ॥ सकृज्जल्पंति राजानः सकृज्जल्पंति पंडिताः। सकृत्कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ ४० ॥

राजा एक बार ही बोलते हैं और पंडित एकबार ही बोलते हैं और कन्या एक बारही दी जाती है ये तीनों कार्य एकबार ही होते हैं ॥ ४० ॥

ऐसे मानकर मेरी बुद्धि किसी प्रकार चलायमान न होगी, गुणी हो चाहे निर्गुण हो, पंडित हो चाहे मूर्ख हो ॥ ४१ ॥ बडी आयुवाला हो चाहे अल्प आयुवाला हो, हे प्रभो ! मेरा भर्त्ता तो वही राजकुमार है दूसरा इंद्राणीका भी पति क्यों न हो मैं कभी नहीं वरूंगी ॥ ४२ ॥ हे तात ! ऐसा मानकर जो कुछ आपको कर्तव्य है सो करो

इति मत्वा न मे बुद्धिर्विचलेच्च कथंचन । सगुणो निर्गुणो वापि मूर्खः पंडित एव च ॥४१॥ दीर्घायुरथवाऽल्पायुः स वै भर्त्ता मम प्रभो । नान्यं वृणोमि भर्तारं यदि वा स्याच्छचीपतिः ॥४२॥ इति मत्वा त्वया तात यत्कर्तव्यं वदस्व तत् ॥ नारद उवाच ॥ स्थिरा बुद्धिश्च राजेन्द्र सावित्र्याः सत्यवान्प्रति ॥ ४३ ॥ त्वरयस्व विवाहाय भर्त्रा सह कुरु त्विमाम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ निश्चये तु मतिं ज्ञात्वा स्थिरां बुद्धिं च निश्चलाम् ॥ ४४ ॥

और मुझसे कहो । ऐसा वचन सुनकर नारदमुनिजी बोले--हे राजेन्द्र ! सावित्रीकी सत्यवान्के प्रति स्थिर बुद्धि है ॥ ४३ ॥ अब आप इसके विवाहकी जलदी करो और इस सावित्रीको भर्त्तासे संयुक्त करो । ईश्वर बोले--सावित्रीकी ऐसी निश्चित स्थिर और निश्चल बुद्धि जानकर ॥ ४४ ॥

यह महाराजा अश्वपति बहुत द्रव्य लेकर वनमें राजा द्युमत्सेनके पास गया ॥ ४५ ॥ परंतु वहां थोडे नौकर औ वृद्ध मंत्रियोंको ही साथमें लेगया । पश्चात् नारदमुनि भी वहां आकाशमें अंतर्धान होगये ॥ ४६ ॥ यह राजा शार्दूल अश्वपति वहां वनमें जाकर द्युमत्सेन राजासे मिले । वहां क्या देखते हैं कि वृद्ध और अंध यह राजा द्युमत्सेन वृक्षके

सावित्र्याश्च महाराजः प्रतस्थेऽसौ वनं प्रति । तां गृहीत्वा ततो राजा द्युमत्सेनस्य संनिधौ ॥ ४५ ॥ स्वल्पानुगो महाराजो वृद्धामात्यैः समन्वितः । नारदस्तु ततः खे वै तत्रैवांतरधीयत ॥ ४६ ॥ स गत्वा राजशार्दूलो द्युमत्सेनेन संगतः । वृद्धश्चांधश्च राजाऽसौ वृक्षमूलमुपाश्रितः ॥ ४७ ॥ स च त्वश्वपती राजा पादौ जग्राह वीर्यवान् । स्वनाम च समुच्चार्य तस्थौ तस्य समीपतः ॥ ४८ ॥

नीचे बैठे हैं ॥ ४७ ॥ वहां अश्वपति राजा द्युमत्सेनके चरण पकडते भये और यह वीर्यवान् अश्वपति नाम राजा अपना नाम उच्चारण करके द्युमत्सेनके पास खडे होगये ॥ ४८ ॥

पश्चात् द्युमत्सेन राजा वनमें होनेवाले मूल व फलोंसे अर्घ्य प्रदान करके राजा अश्वपतिको आनेका कारण पूछने लगे ॥४९॥ हे मुनिवर ! उसके अनंतर राजा द्युमत्सेन राजा अश्वपतिसे कुशल पूछते भये। अश्वपति बोले--हे राजन् ! आज आपके दर्शन करके मेरे अति कुशल है ॥ ५० ॥ हे राजशार्दूल ! मेरी पुत्री सावित्री आपके पुत्रकी वांछा

उवाच राजा तं भूपं किमागमनकारणम् । पूजयित्वाऽर्घ्यदानेन वन्यमूलफलैश्च सः ॥ ४९ ॥ ततः पप्रच्छ कुशलं स राजा मुनिसत्तम ॥ अश्वपतिरुवाच ॥ कुशलं दर्शने नाद्य तव राजन्ममाद्य वै ॥ ५० ॥ दुहिता मम सावित्री तव पुत्रमभीप्सति । भर्तारं राजशार्दूल प्राप्नोत्वियमनिंदिता ॥ ५१ ॥ मनसा कांक्षितं पूर्वं भर्तारमनया विभो । आवयोश्चैव सम्बन्धो भवत्वद्य मयेप्सितः ॥ ५२ ॥

करती है इसलिये यह अनिन्दिता अपने भर्त्ताको प्राप्त होवे अर्थात् मेरी पुत्रीका अपने पुत्रके साथ विवाह करलो ॥ ५१ ॥ हे विभो ! इस सावित्रीने पहले मनसे आपके पुत्रको भर्ता बनाना इच्छित किया है इसलिये हमारा यह संबंध आज हो जावे मुझको यह संबंध वांछित है ॥ ५२ ॥
ऐसे वचन सुनकर द्युमत्सेन बोले--हे राजेंद्र ! मैं वृद्ध अन्धा फल मूल भोजन करनेवाला और राज्यसे रहित हूं और यह मेरा पुत्र भी वन्य फल भोजन करके जीता है ॥५३॥ हे राजन् ! आपकी पुत्री इस वनमें कैसे दुःखोंको सहेगी क्योंकि जिससे इसने कभी दुःखोंका अनुभव नहीं किया इसलिये मैं नहीं इच्छा करता हूं ॥ ५४ ॥ अश्वपति

द्युमत्सेन उवाच ॥ वृद्धश्चांधश्च राजेंद्र फलमूलाशनो नृप । राज्याच्च्युतश्च मे पुत्रो वन्येनाद्य च जीवति ॥ ५३ ॥ सा कथं सहते दुःखं दुहिता तव कानने । अनभिज्ञा च दुःखानामित्यहं नाभिकांक्षये ॥ ५४ ॥ अश्वपतिरुवाच ॥ अनया च वृतो भर्त्ता जानंत्या राजसत्तम । अनेन सह संवासस्तव पुत्रेण मानद ॥ ५५ ॥ स्वर्गतुल्यो महाराज भविष्यति न संशयः । एवमुक्तस्तदा तेन राज्ञा राजर्षिसत्तमः ॥ ५६ ॥ ॥ ९६ ॥

बोले--हे राजसत्तम ! पूर्वोक्त ये सब बातें जानती हुई इस सावित्रीने आपका पुत्र भर्ता वरा है। हे मानके देनेवाले आपकी आज्ञासे इस सावित्रीका आपके पुत्रके साथ सहवास होगा ॥ ५५ ॥ हे महाराज ! वह सहवास स्वर्गके तुल्य होगा इसमें संदेह नहीं। अश्वपति राजासे कहा हुआ वह राजर्षिसत्तम द्युमत्सेन ॥ ५६ ॥

तथा ऐसे ही करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा कर उत्तम विवाह करता भया। अश्वपति राजा इस प्रकार सावित्रीका विवाह करके और अनेक प्रकारोंके धनोंसे राजेन्द्र द्युमत्सेनका पूजन करके ॥ ५७ ॥ राजा द्युमत्सेनको प्रणाम करके अपने नगरके प्रति चलदिये। और इधर सावित्री तो पतिको प्राप्त होकर जैसे इन्द्रको प्राप्त होकर इन्द्राणि ॥५८॥ और

तथेति स प्रतिज्ञाय चकारोद्वाहमुत्तमम्। कृत्वा विवाहं राजेन्द्रं संपूज्य विविधैर्धनैः ॥ ५७ ॥ अभिवाद्य द्युमत्सेनं जगाम नगरं प्रति। सावित्री तु पतिं लब्ध्वा इन्द्रं प्राप्य शची यथा ॥ ५८ ॥ सत्यवानपि ब्रह्मर्षे तया पत्न्याऽभिनन्दितः। क्रीडते तद्वनोद्देशे पौलोम्या मघवानिव ॥५९॥ नारदस्य च तद्वाक्यं हृदये तु मनस्विनी। वहंती नियमं चक्रे व्रतस्यास्य च भामिनी ॥६०॥ गणयंती दिनान्येव न लेभे हर्षमुत्तमम्। अस्मिन्दिने च मर्तव्यमिति सत्यवता मुने ॥ ६१ ॥

हे ब्रह्मर्षे ! सावित्री पत्नीसे अभिनंदित किया गया सत्यवान् इन्द्राणीके समान सावित्रीको प्राप्त होकर इन्द्रके समान वनोदेशोंमें विहार करने लगे ॥ ५९ ॥ यह मनस्विनी भामिनी सावित्री अपने स्वामीकी अल्पायुका जो वह नारदमुनिका वाक्य है उसको हृदयमें रखकर नियम करती रही ॥ ६० ॥ हे मुने ! यह सावित्री "मेरे स्वामीकी अमुक दिन विषे मृत्यु है" ऐसा विचार कर दिनोंकी गिनती करती हुई उत्तम आनंदको नहीं प्राप्त की ॥ ६१ ॥ हे विप्र ! भर्ताके मरनेका कारण उस दिनको जानकर यह सावित्री त्रिरात्र व्रत उद्देश करके दिनरात्रिविषे स्थिर होती भई ॥६२॥ उसके अनंतर यह चारुहासिनी सावित्री त्रिरात्रि व्रतसे निवृत्त होकर पितर और देवताओंका तर्पण

ज्ञात्वा तं दिवसं विप्र भर्तुर्मरणकारणम्। व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रौ स्थिराऽभवत् ॥६२॥ ततस्त्रिरात्रं निर्वर्त्य संतर्प्य पितृदेवताः। श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववन्दे चारुहासिनी ॥६३॥ कुठारं परिगृह्याथ कठिनं चैव सुव्रतः। प्रतस्थे स वनायैव सावित्री वाक्यमब्रवीत् ॥६४॥ न गन्तव्यं वनं त्वद्य मम वाक्येन मानद। अथवा गम्यते साधो मया सह वनं व्रज ॥ ६५ ॥

करती भई। पश्चात् सास ससुरके चरणोंको प्रणाम करती भई ॥६३॥ पश्चात् सुव्रत सत्यवान् जब कठिन कुल्हाडेको लेकर वनमें चला तब सावित्रीने वचन कहा ॥६४॥ हे मानके देनेवाले ! हे साधो ! मेरे कहनेसे आज आपको

वनमें नहीं जाना चाहिये अथवा जाते ही तो मुझको साथमें ले चलो ॥ ६५ ॥ हे प्रभो ! इस आश्रममें मुझको एक वर्ष पूर्ण हो चुका इसलिये मैं भी वनको देखा चाहती हूँ यह प्रसाद मेरे ऊपर करो ॥ ६६ ॥ सत्यवान् बोले-- हे सुश्रोणि ! मैं स्वतंत्र नहीं मेरे माता पिताओंको पूछो, हे शुचिस्मिते ! जो वे भेजें तो मेरे साथ चलो ॥ ६७ ॥

संवत्सरोऽभवत्पूर्ण आश्रमेऽस्मिन्मम प्रभो । तद्वनं द्रष्टुमिच्छामि प्रसादं कुरु सुव्रत ॥६६॥ सत्यवानुवाच ॥ नाहं स्वतंत्रः सुश्रोणि पृच्छस्व पितरौ मम । ताभ्यां प्रस्थापिताऽऽगच्छ मया सह शुचिस्मिते ॥६७॥ एवमुक्ता तदा तेन भर्त्रा सा कमलेक्षणा । श्वश्रूश्वशुरयोः पादावभिवाद्येदमब्रवीत् ॥६८॥ वनं द्रष्टुमभीच्छेयमाज्ञा मह्यं प्रदीयताम् । भर्त्रा सह वनं गंतुमेवं मे त्वरते मनः ॥ ६९ ॥

कमलके समान नेत्रोंवाली सावित्रीको जब भर्ताने ऐसे कहा तब सावित्री सास ससुरके चरणोंको प्रणाम करके यह वचन कहने लगी ॥६८॥ हे पूज्यो ! वनको देखनेकी मैं इच्छा करती हूँ इसलिये आप मुझको आज्ञा देवें भर्ताके साथ वन देखनेको मेरा मन बडी शीघ्रता करता है ॥ ६९ ॥

सावित्रीका ऐसा वचन सुनकर द्युमत्सेन कहने लगे कि हे भद्रे ! सुव्रते ! तुमने जो व्रत किया है उसका पारण करो ॥ ७० ॥ हे भीरु ! पश्चात् पारणके अंतमें तुम वनको जानेके योग्य हो । सावित्री बोली -हे तात ! मैंने रात्रिमें चंद्रोदयतक यह नियम किया है ॥ ७१ ॥ चन्द्रोदय होनेपर मुझे भोजन करना योग्य है इसलिये आज मैं

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा द्युमत्सेनोऽब्रवीदिदम् । व्रतं कृतं त्वया भद्रे पारणं कुरु सुव्रते ॥७०॥ पारणान्ते ततो भीरु वनं गंतु त्वमर्हसि॥सावित्र्युवाच ॥ नियमश्च कृतोऽस्माभी रात्रौ चंद्रोदये सति ॥ ७१ ॥ जाते मया प्रकर्तव्यं भोजनं तात मे शृणु । वनदर्शनकामोऽस्ति भर्त्रा सह ममाद्य वै ॥ ७२ ॥ न मे तत्र भवेद्ग्लानिर्भर्त्रा सह नराधिप । इत्युक्तस्तु तया राजा द्युमत्सेनोऽब्रवीदिदम् ॥७३॥ यत्तेऽभिलषितं पुत्रि तत्कुरुष्व सुमध्यमे । नमस्कृत्य तु सावित्री श्वश्रूं च श्वशुरं तथा ॥ ७४ ॥

भर्ताके साथ वनको देखनेकी इच्छा करती हूं ॥ ७२ ॥ हे नराधिप ! वहां वनमें भर्ताके साथ मुझको किसी प्रकारकी ग्लानि न होगी । सावित्रीसे इस प्रकार कहा हुआ द्युमत्सेन राजा यह वचन कहने लगा ॥ ७३ ॥ हे पुत्रि !

हे सुमध्यमे ! जो तुमको वांछित हो सो करो इस प्रकार कही हुई सावित्री सास ससुरको नमस्कार करके ॥ ७४ ॥ हे मुने ! प्राप्त हुआ है काल जिसको ऐसे भर्त्ताको देखती हुई यह मनस्विनी सावित्री भर्ता सत्यवान्के साथ वनमें जाती भई ॥ ७५ ॥ वहाँ फूले हुए और फले हुए वृक्षोंसे युक्त वनको देखकर वृक्ष और मृगोंके नाम पूछने

सहिता सा जगामाथ तेन सत्यवता मुने । विलोकयंती भर्त्तारं प्राप्तकालं मनस्विनी ॥७५॥ वनं च फलितं दृष्ट्वा पुष्पितं द्रुमसंकुलम् । द्रुमाणां चैव नामानि मृगाणां चैव भामिनी ॥७६॥ पश्यंति मृगयूथानि हृदयेन प्रवेपती । तत्र गत्वा सत्यवान्वै फला न्यादाय सत्वरम् ॥७७॥ काष्ठानि च समादाय बबंध भारकं तदा । कठिनं पूरया मास कृत्वा वृक्षावलंबनम् ॥ ७८ ॥

लगी ॥ ७६ ॥ काँपते हुए हृदयसे युक्त हुई मृगयूथोंको देखने लगी । और सत्यवान् भी वहाँ जाकर शीघ्र फलोंको लेकर ॥ ७७ ॥ और काष्ठको लेकर भार बांधता भया और उस भारको वृक्षके पास खडा करके करडा पूर्ण करता भया ॥ ७८ ॥ यह महासती सावित्री बडके वृक्षके समीप बैठीहुई थी इतनेमें काष्ठ फाडते हुए इस सत्यवान्के मस्तकमें पीडा उठी ॥ ७९ ॥ और बड़ी ग्लानि होकर संपूर्ण अंग कांपनेलग.गये तब यह वृक्षके समीप सावित्रीको प्राप्त होकर यह वचन कहने लगा ॥८०॥ हे भद्रे ! मेरे शरीरमें अत्यंत कंप उत्पन्न हुआ है और शिरमें पीडा उत्पन्न

वटवृक्षस्य सा साध्वी उपविष्टा समीपतः । काष्ठं पाटयतस्तस्य जाता शिरसि वेदना ॥ ७९ ॥ ग्लानिश्च महती जाता गात्राणां वेपथुस्तदा । आगत्य वृक्षसामीप्यं सावित्री मिदमब्रवीत् ॥८०॥ मम गात्रेऽतिकंपश्च जाता शिरसि वेदना । कण्टकैर्भिद्यते भद्रे शिरो मे शूलसंमितैः ॥८१॥ उत्सङ्गे तव सुश्रोणि स्वप्तुमिच्छामि सुव्रते । अभिज्ञा सा विशालाक्षी तस्य मृत्योर्मनस्विनी ॥ ८२ ॥

हुई है और हे प्रिये ! मेरा शिर शूलसरीखे काँटोंसे भेदन किया जाता है ॥ ८१ ॥ हे सुश्रोणि ! हे सुव्रते ! तुम्हारी गोदीमें सोनेकी इच्छा करता हूँ इनना कहनेपर वह विशालाक्षी मनस्विनी सावित्री उस अपने स्वामीकी मृत्युको

जानगई ॥ ८२ ॥ यह भामिनी सावित्री प्राप्तहुए कालको मानकर वहीं स्थित होगई और उस कालमें सत्यवान् भी सावित्रीकी गोदीमें शिर रखकर सोगया ॥ ८३ ॥ इतनेमें कृष्णपिंगल रूपवाला एक पुरुष आया परन्तु वह कैसा कि शरीर करके जाज्वल्यमान दीखता था भामिनी सावित्री उस वैसे रूपवालेको देखतीभई ॥ ८४ ॥ वाक्यको

प्राप्तं कालं मन्यमाना तस्थौ तत्रैव भामिनी। सत्यवानपि सुप्तस्तु कृत्वोत्सङ्गे शिरस्तदा ॥८३॥ तावत्तत्र समागच्छत्पुरुषः कृष्णपिंगलः । जाज्वल्यमानो वपुषा ददर्शामुं च भामिनी ॥ ८४ ॥ उवाच वाक्यं वाक्यज्ञा कस्त्वं लोकभयंकरः । नाहं धर्षयितुं शक्या पुरुषेणापि केनचित् ॥ ८५ ॥ इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं यमो लोकभयंकरः ॥ यम उवाच ॥ क्षीणायुस्तु वरारोहे भर्त्ता तव मनस्विनि ॥ ८६ ॥

जाननेवाली यह सावित्री कहनेलगी कि लोगोंको भय करनेवाला तू कौन है ? मैं किसी पुरुषसे भी भय नहीं मानती हूँ ॥ ८५ ॥ ऐसे कहाहुआ वह लोगोंको भय करनेवाला यम सावित्रीको उत्तर देनेलगा । यम बोला-हे वरारोहे ! हे मनस्विनि ! मैं यम हूँ तेरा भर्ता क्षीण आयुवाला है॥८६॥ मैं इसको बाँधकर लेजाऊंगा ऐसा करनेकी मेरी इच्छा है । सावित्री बोली--हे भगवन् ! हे यमराज ! ऐसा सुननेमें आता है कि आपके दूत मनुष्योंको लेनेको आते हैं ॥ ८७ ॥ हे प्रभो ! फिर आप स्वयं किस कारण आये हो ? जब सावित्रीसे भगवान् धर्मराज ऐसे कहे गये तब संपूर्ण अपना

नेष्याम्येनमहं बद्ध्वा ह्येतन्मे च चिकीर्षितम् ॥ सावित्र्युवाच ॥ श्रूयते भगवन्दूतास्तवा गच्छंति मानवान् ॥८७॥ नेतुं किल भवान् कस्मादागतोऽस्ति स्वयं प्रभो । इत्युक्तः पितृराजस्तां भगवान् स्वचिकीर्षितम् ॥ ८८ ॥ यथावत्सर्वमाख्यातुं तत्प्रियार्थं प्रच क्रमे । अयं च धर्मसंयुक्तो रूपवान् गुणसागरः ॥ ८९ ॥ नार्हो मत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः । ततः सत्यवतः कायात्पाशबद्धं वशं गतम् ॥ ९० ॥

चिकीर्षित सावित्रीके प्रियके लिये कहनेका प्रारंभ किया । यम बोले--हे सावित्रि ! यह तेरा भर्ता सत्यवान् धर्मनिष्ठ रूपवान् और गुणसागर है ॥८८॥८९॥ यह मेरे दूतों करके लेजाना योग्य नहीं है इसलिये मैं स्वयं आया हूँ। उसके

अनंतर सत्यवान्‌के शरीरसे पाशेसे बांधकर वश कियाहुआ ॥९०॥ अंगुष्ठमात्र पुरुषको यमराज बलसे खींचा पश्चात् प्राण हरेजानेके कारण श्वासरहित कांतिरहित ॥ ९१ ॥ चेष्टारहित और अप्रियदर्शन वह सत्यवान्‌का शरीर होगया। पश्चात् यमराज तो उस शरीरको बाँधकर दक्षिण दिशाको मुख किये चलदिये ॥ ९२ ॥ परंतु नियम व्रतसे संसिद्ध

अंगुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्। ततःसमुद्धृतप्राणं गतश्वासं हतप्रभम्॥९१॥ निर्विचेष्टं शरीरं तद्बभूवाप्रियदर्शनम्। यमस्तु तं ततो बद्ध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः ॥९२॥ सावित्री चापि दुःखार्ता यममेवान्वगच्छत। नियमव्रतसंसिद्धा महाभागा पतिव्रता ॥९३॥ यम उवाच ॥ निवर्त गच्छ सावित्रि कुरुष्वास्यौर्ध्वदैहिकम्। कृतं भर्तु स्त्वयाऽऽनृण्यं यावद्गम्यं गतं त्वया ॥ ९४ ॥

महाभागा और पतिव्रता यह सावित्री भी दुःखसे पीडित हुई धर्मराजके पीछेही चलतीभई ॥ ९३ ॥ यम बोले--हे सावित्री ! उलटी फिरो जाओ और इस अपने भर्ताकी औध्वर्दैहिक क्रिया करो और जितनी दूर पिछाडी चलना चाहिये था उतनी देर चलकर तू अपने भर्ताका आनृण्य करदिया ॥ ९४ ॥

सावित्री बोली--हे प्रभो ! आप जहां मेरे भर्ताको लेजाओगे और आप जहां जाओगे वहीं मुझको जाना है यह सनातनधर्म है ॥ ९५ ॥ तपसे गुरुभक्तिसे भर्ताके स्नेहसे व्रतसे और आपके प्रसादसे मेरी गति कहीं रुकनेवाली नहीं है ॥९६॥ तत्वार्थदर्शी पंडित साप्तपदी मैत्री कहते हैं अर्थात् सात पैग साथ चले तो मैत्री होगई इसलिये अब उस

सावित्र्युवाच ॥ यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति। मयापि तत्र गंतव्यमेष धर्मः सनातनः ॥९५॥ तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद् व्रतेन च। तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ॥९६॥ प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः। मित्रतां च पुरस्कृत्य किंचिद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥९७॥ ज्ञानात्मवंतस्तु वने चरंति धर्मं च वासं च परिश्रमं च। विज्ञानतो धर्ममुदाहरंति तस्मात्संतो धर्ममाहुः प्रधानम् ॥ ९८ ॥

मित्रताको आगे करके कुछ कहती हूं सुनो ॥ ९७ ॥ ज्ञानात्मावाले सत्पुरुष वनमें निवास करके परिश्रमसे धर्मका आचरण करते हैं। और विज्ञानसे धर्मका उदाहरण देते हैं। इस लिये संत धर्मको प्रधान कहते हैं ॥ ९८ ॥

संतोंका मानाहुआ जो धर्म है उसके अनुसार संपूर्ण मनुष्य चलते हैं । सत्पुरुष एक धर्मकी वांछा करते हैं और न दूसरेकी न तीसरेकी वांछा करते हैं इसलिये सन्त धर्मको ही प्रधान कहते हैं ॥९९॥ यम बोले--हे अनिंदिते ! उलटी फिरो और इस तुम्हारी वाणी करके मैं बडा प्रसन्न हुआ हूं । कैसी यह वाणी है ? स्वर अक्षर व्यंजन और हेतु इनसे

एकस्य धर्मेण सतां मतेन सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः । वांछेद्द्वितीयं न च वै तृतीयं तस्मात्संतो धर्ममाहुः प्रधानम् ॥९९॥ यम उवाच ॥ निवर्त तुष्टोऽस्मि तवानया गिरा स्वराक्षरव्यंजनहेतुयुक्तया । वरं वृणीष्वेह विनाऽस्य जीवितं ददामि ते सर्वमनिंदिते वरम् ॥१००॥ सावित्र्युवाच ॥ च्युतः स्वराज्याद्वनवासमाश्रितोऽप्यंधो विनष्टः श्वशुरो ममाश्रमे । स लब्धचक्षुर्बलवान्भवेन्नृपस्तव प्रसादाज्ज्वलनार्कसन्निभः ॥ १ ॥

युक्त है इस लिये एक सत्यवान्के जीनेके विना अन्य कोई वर तुम मांगो मैं दूंगा ॥ १०० ॥ सावित्री बोली--अच्छा भगवन् ! यह वर दो कि अपने राज्यसे अलग हुए वनवासमें स्थित आश्रमविषे मेरे अंधे श्वशुर हैं उनके नेत्र अच्छे होजावें और वह बलवान् राजा होजावें और आपकी कृपासे सूर्यके सदृश उनका तेज हो जावे ॥ १ ॥ यमराज बोले--हे अनिंदिते ! मैं तुझको वर देता हूं जैसा तुमने कहा है वैसाही होगा मार्ग चलनेसे मैं तुम्हारे शरीरमें ग्लानिको देखता हूं इसलिये लौटकर जाओ कि जिससे मार्गका श्रम न हो ॥ २ ॥ सावित्री बोली--हे सुरेश ! भर्ताके समीपमें मुझको कैसा श्रम है जहाँ भर्ता है वहीं मेरी ध्रुवगति है और भी मेरे वचन आप श्रवण करें ॥ ३ ॥ संतोंका

यम उवाच ॥ ददामि तेऽहं तमनिंदिते वरं यथा त्वयोक्तं भविता च तत्तथा । तवाध्वना ग्लानिमिवोपलक्षये निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ॥२॥ सावित्र्युवाच ॥ कुतः श्रमो भर्तृसमीपतो हि मे यतो हि भर्ता मम सा गतिर्ध्रुवा । यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे ॥३॥ सतां सकृत्संगतमीप्सितं परं ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते । न चाफलं सत्पुरुषेण संगतं ततः सतां संनिवसेत्समागमे ॥ ४ ॥

एकबार भी कियाहुआ समागम ईप्सित होता है कभी नहीं छूटता है पश्चात् मित्रभाव होजाता है । सत्पुरुषोंका समागम कभी निष्फल नहीं हो सकता है इस लिये सत्पुरुषोंके समागममें बसना ही योग्य है ॥ ४ ॥

यम बोले--हे भामिनि ! जो तुमने वचन कहा है वह मनके अनुकूल है पंडितोंकी बुद्धिको बढानेवाला है और हितकारी है इसलिये मैं प्रसन्न हुआ कहता हूं कि तुम सत्यवान्‌के जीनेके विना दूसरा वर मुझसे मांगो ॥ ५ ॥ सावित्री बोली--हे यमराज ! बुद्धिमान् मेरे ससुरका राज्य जो चला गया है वह पार्थिव अपने राज्यको प्राप्त होजायँ और

यम उवाच ॥ मनोऽनुकूलं बुधबुद्धिवर्धनं त्वया यदुक्तं वचनं हिताश्रयम् । विना पुनः सत्यवतो हि जीवितं वरं द्वितीयं वरयस्व भामिनि ॥५॥ सावित्र्युवाच ॥ हृतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः । जह्यात्स्वधर्मान्न च मे गुरुर्यथा द्वितीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥ ६ ॥ यम उवाच ॥ स्वमेव राज्यं प्रतिपत्स्यतेऽचिरान्न च स्वधर्मात्परिहास्यते नृपः । कृतेन कामेन मया नृपात्मजे निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ॥ ७ ॥

मेरे स्वामी अपने धर्मका परित्याग न करे बस दूसरा यही मेरा वर है ॥ ६ ॥ यमराम बोले--हे नृपात्मजे ! राजा द्युमत्सेन शीघ्रही अपने राज्यको प्राप्त होजावे और कभी अपने धर्मसे च्युत मत हो इस वरके देनेसे हे सावित्रि ! तुम वापिस जाओ क्योंकि जिससे तुझको चलनेका श्रम न हो ॥ ७ ॥ सावित्री बोली--हे देव ! यह प्रजा आपने नियम करके रोकी है और रोककर निकामतामें लगाई है यही आपका यमपना विख्यात है मेरी कहीहुई वाणीको आप ऐसे जानो ॥ ८ ॥ कर्म मन और वाणीसे संपूर्ण प्राणियोंमें द्रोह न होना अनुग्रह होना और दान देना यह

सावित्र्युवाच ॥ प्रजास्त्वयैता नियमेन संयता नियम्य चैता नयसे निकामया । ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं निबोध चेमां गिरमीरितां मया ॥८॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा । अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥९॥ एवं प्रायश्च लोकोऽयं मनुष्याः शक्तिपेशलाः । संतस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते ॥११०॥ यम उवाच ॥ पिपासितस्येव भवेद्यथा पयस्तथा त्वया वाक्यमिदं समीरितम् । विना पुरः सत्यवतोऽस्य जीवितं वरं वृणीष्वेह शुभे यदिच्छसि ॥ ११ ॥

सनातन धर्म कहा है ॥ ९ ॥ बहुत करके यह लोक इस प्रकार है और मनुष्य भी ऐसी ही शक्तिवाले हैं संतोंका तो स्वभाव है कि प्राप्त हुए शत्रओंपर भी दया ही करते हैं ॥ ११० ॥ यमराज बोले- हे शुभे ! प्यासे पुरुषको जैसे

जल प्रिय लगता है ऐसे तेरा कहाहुआ वाक्य प्रिय लगता है इससे प्रसन्न हुआ मैं कहताहूं कि एक सत्यवान्के जीनेके सिवाय और कोई तीसरा वर मांगो॥११॥सावित्री बोली--हे देव ! राजा मेरे पिता संतानरहित हैं उनके सौ पुत्र होजावें और उन सौओंका भी और वंश चले तीसरा मेरा यही वर है॥१२॥यमराज बोले--हे शुभे ! तेरे पिताके कुलकी संतान

सावित्र्युवाच ॥ ममानपत्यः पृथिवीपतिः पिता भवेत्पितुः पुत्रशतं तथौरसः । कुलस्य संतानकरं च यद्भवेत्तृतीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥ १२ ॥ यम उवाच ॥ कुलस्य संतानकरं सुवर्चसं शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे । कृतेन कामेन नराधिपात्मजे निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता ॥ १३ ॥ सावित्र्युवाच ॥ न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ मनो हि मे दूरतरं प्रधावति । अथ व्रजन्नेव गिरं समुद्यतां मयोच्यमानां शृणु भूय एव च ॥ १४ ॥

करनेवाले तेजस्वी सौ पुत्र होवें । हे राजाकी पुत्री ! वरकी इच्छा करतीहुई अब तुम दूर आगई इसलिये उलटी फिरो ॥१३॥ सावित्री बोली--हे देव ! मेरे भर्ताके समीपमें मुझको कुछ दूर नहीं है क्योंकि जिससे मेरा मन हटाया हुआ भी नहीं हटता है इसलिये आप चलतेहुए वाणी कहो मैं सुनती हूँ और फिर जो मैं कहती हूँ उसको आप सुनो ॥१४॥ हे देव ! आप विवस्वान् (सूर्य) क प्रतापवान् पुत्र हो इसलिये बुध आपको वैवस्वत कहते हैं और हे ईश्वर ! आप प्रजामें समान धर्म आचरण कराते हो इसीलिये धर्मराज कहाते हो ॥ १५ ॥ सत्पुरुषोंमें जैसा विश्वास होसकता है वैसा अपने आत्माविषे भी नहीं होसकता है इसलिये सत्पुरुषोंमें संपूर्ण स्नेह करते हैं ॥ १६ ॥ संपूर्ण भूतोंका विश्वास

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवांस्ततो हि वैवस्वत उच्यते बुधैः । समेन धर्मेण चरंति ताः प्रजास्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजतः ॥ १५ ॥ आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु च । तस्मात्सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति ॥१६॥ सौहृदात्सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते । तस्मात्सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः ॥१७॥ यम उवाच ॥ उदाहृतं ते वचनं यदङ्गने शुभं न तादृक् त्वदृते श्रुतं मया । अनेन तुष्टोऽस्मि विनाऽस्य जीवितं वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ वै ॥ १८ ॥

सौहृदसे होता है इसीलिये सत्पुरुषोंमें जन विशेष करके विश्वास करते हैं ॥ १७ ॥ यम बोले -हे अंगने ! जैसा शुभ वचन तुमने कहा है ऐसा तुम्हारे विना मैंने नहीं सुना इसलिये इस वचनसे प्रसन्न हुआ मैं कहता हूँ कि इस सत्यवान्के जीवितके विना तुम चौथा कोई वर माँगो और वापिस जाओ ॥ १८ ॥

सावित्री बोली--हे प्रभो ! सत्यवान्के और मेरे बलवीर्यशाली औरस सौपुत्रोंका वंश चले यह चौथा वर माँगती हूँ ॥ १९ ॥ यमराज बोले--हे अबले ! तुम्हारा और सत्यवान्का वीर्यशाली पुत्रोंका सैकडों वंश प्रीतिका करनेवाला हो और हे राजपुत्रि ! अब तुम बहुत दूर आगयी हो उलटी फिरो और अब यह

सावित्र्युवाच ॥ ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं भवेदुभाभ्यामिह यत्कुलोद्भवम् । शतं सुतानां बलवीर्यशालिनामिमं चतुर्थं वरयामि ते वरं ॥१९॥ यम उवाच ॥ शतं सुतानां बलवीर्यशालिनां भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले । परिश्रमस्तेन भवेन्नृपात्मजे निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता॥१२०॥सावित्र्युवाच ॥ सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः संतो न सीदंति न च व्यथीत । सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति सद्भ्यो भयं नानुवर्तंति संतः ॥२१॥

मार्गका परिश्रम तुझको मत हो ॥ १२० ॥ सावित्री बोली- सत्पुरुषोंकी संपूर्णकालमें निरंतर धर्मवृत्ति रहती है और संतजन न स्वयं दुःखित होते हैं न औरको दुःख देते हैं संतोंका जो संतोंके साथ समागम है वह निष्फल नहीं होता है । और संतोंसे संत कभी भय नहीं करते हैं ॥ २१ ॥

संतोंके सत्यसे सूर्य चलता है और संतोंके सत्यसे शेष पृथ्वीको धारण करता है हे यमराज ! संत जो हैं भूत भव्यकी गति हैं और संतोंके मध्यमें संत कभी दुःखको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ बडोंसे सेवित यह वृत्तांत है ऐसे निरंतर जानकर संत जो हैं वे दूसरोंका प्रयोजन सिद्ध करते हुए आपसमें नहीं देखते हैं ॥ २३ ॥ सत्पुरुषोंका प्रसाद निरर्थक

सतां हि सत्येन च याति सूर्यः सत्येन भूमिः फणिना विगृह्यते । संतो गतिर्भूतभव्यस्य राजन् सतां मध्ये नावसीदंति सन्तः ॥२२॥आयुर्जुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् । संतः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षंते परस्परम् ॥२३॥ न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो नार्थस्तथा नश्यति नापि मानः । तस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं तस्मात्संतो रक्षितारो भवंति॥२४॥ यम उवाच ॥ यथायथा भाषसि धर्मसंहितं मनोऽनुकूलं सुखदं महार्थवत् । तथा तथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते ॥ २५ ॥

नहीं होता है और अर्थ तथा मान भी नष्ट नहीं होता है जिससे सतोंमें ये गुण नित्य बसते हैं इसलिये संत नित्य रक्षा करनेवाले होते हैं ॥ २४ ॥ हे पतिव्रते ! धर्मरहित मनोऽनुकूल सुंदर पदोंवाला और बडे अर्थवाला वचन जैसे जैसे भाषण करती है वैसे वैसे तुझमें मेरी उत्तम भक्ति उत्पन्न होती है इसलिये कोई अलभ्य वर माँगो ॥ २५ ॥

सावित्री बोली--हे मानद ! सुकृतके विना आप मोक्ष तो कैसे देसकते हैं क्योंकि जैसे अन्य वर है वैसा यह वर नहीं है इसलिये मैं यही वर मांगती हूँ कि यह सत्यवान् जीवित होजावे क्योंकि जिससे पतिके विना मैं मृत होरही हूँ वैसी न रहूँ ॥ २६ ॥ भर्त्ताके विना की हुई मैं सुखकी इच्छा नहीं करती हूँ भर्त्ताके विना की हुई मैं स्वर्गकी इच्छा नहीं

सावित्र्युवाच ॥ न तेऽपवर्गः सुकृताद्विना कृतस्तथा यथाऽन्येषु वरेषु मानद । वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना ॥२६॥ न कामये भर्तृविनाकृता सुखं न कामये भर्तृविनाकृता दिवम् । न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम् ॥२७॥ वरातिसर्गः शतपुत्रता मम त्वयैव दत्तो ह्रियते च मे पतिः । वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं तवैव सत्यं वचनं भविष्यति ॥ २८ ॥

करती हूँ और भर्त्ताके विना की हुई मैं लक्ष्मीकी इच्छा नहीं करती हूँ विशेष क्या है भर्ताके विना मैं जीनेकी भी इच्छा नहीं करती हूँ ॥ २७ ॥ हे देव ! आपने ही मुझको सौ पुत्रोंका वरदान दिया है और आपही मेरे पतिको लेजाते हो अब मैं आपसे यही वर माँगती हूँ कि यह सत्यवान् जीवित होजावे जिससे आपका वचन भी सत्य हो ॥ २८ ॥ मार्कंडेय बोले--पश्चात् वैवस्वत यमदेव 'तथास्तु' ऐसे ही हो ऐसा कहकर और सत्यवान्के पाशको छोडकर प्रसन्न हुए धर्मराज सावित्रीको यह वचन कहनेलगे ॥ २९ ॥ हे भद्रे ! हे कुलनंदिनि ? यह तुम्हारा भर्ता मैंने छोडदिया है रोगरहित इसको लेजाओ यह सत्यवान् सिद्धप्रयोजनवाला होजावेगा ॥ १३० ॥ और तुम्हारे सहित यह चार सौ

मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा तु तं पाशं मुक्त्वा वैवस्वतो यमः । धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत् ॥ २९ ॥ एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनंदिनि । अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थः स भविष्यति ॥१३०॥ चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्धमवाप्स्यति । सा गता वटसामीप्यं कृत्वोत्संगे शिरस्ततः ॥ ३१ ॥ प्रबुद्धस्तु ततो ब्रह्मन्सत्यवानिदमब्रवीत् । मया स्वप्नो वरारोहे दृष्टोऽद्यैव तु भामिनि ॥ ३२ ॥

वर्षकी आयुको प्राप्त होवेगा । यमराजका ऐसा वचन सुनकर यह सावित्री उसी बडके पास गई और अपने स्वामीके शिरको गोदीमें रखकर पहलेकी तरह स्थित होगयी ॥३१॥ हे ब्रह्मन् ! उसके अनंतर सत्यवान् जागकर कहने लगा कि हे वरारोहे ! हे भामिनि ! मैंने अभी बडा आश्चर्य स्वप्न देखा है ॥ ३२ ॥

सत्यवान्ने वही संपूर्ण वृत्तांत कहा जो सावित्रीका यमके साथ हुआ था और उस सावित्रीने भी वह संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया जो यमके साथ संवाद हुआ था ॥ ३३ ॥ उसके अनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया तब पुत्रके आनेकी इच्छावाला राजा द्युमत्सेन इधर उधर दौडने लगा ॥ ३४ ॥ पुत्रके दर्शनकी इच्छासे सब आश्रमों पर घूतमा हुआ

तत्सर्वं कथितं तस्या यद्वृत्तं सर्वमेव तत् । तया च कथितः सर्वः संवादश्च यमेन ह ॥३३॥ अस्तं गते ततः सूर्ये द्युमत्सेनो महीपतिः । पुत्रस्यागमनाकांक्षी इतश्चेतश्च धावति ॥ ३४ ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छन् पुत्रदर्शनकांक्षया । आवयोरंधयोर्यष्टिः क्व गतोऽसि विनाऽऽवयोः ॥३५॥ एवं स विविधं क्रोशन्सपत्नीको महीपतिः । चकार दुःख संतप्तः पुत्रपुत्रेति चासकृत् ॥३६॥ अकस्मादेव राजेन्द्रो लब्धचक्षुर्बभूव ह । तद्दृष्ट्वा परमाश्चर्यं चक्षुःप्राप्त्या द्विजोत्तमाः ॥ ३७ ॥

कहने लगा कि अहो हम अंधोंकी यष्टिरूप सत्यवान् हमारे विना कहां चला गया ? ॥ ३५ ॥ रानी सहित यह राजा द्युमत्सेन इस प्रकार अनेक विलाप करता हुआ दुःखसे संतप्त हुआ वारंवार पुत्र पुत्र पुकारने लगा ॥ ३६ ॥ ऐसे करते हुए जब यह राजेंद्र अकस्मात् लब्धचक्षु हो गया अर्थात् इसको दीखने लग गया तब उसको देखकर द्विजोत्तमोंको परम आश्चर्य हुआ कि नेत्र कैसे प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ उसके अनंतर वे तपस्वी अत्यंत सांत्वपूर्वक वचन कहने लगे कि हे महाराज ! हे महीपते ! यह नेत्रोंकी प्राप्ति शुभ सूचना करती है॥३८॥वह यह है कि हे नृपसत्तम ! पुत्रके साथ आपका अवश्य मिलाप होगा । ईश्वर बोले -जबतक ये द्विजसत्तम तपस्वी ऐसा कह ही रहे थे कि ॥३९॥

सांत्वपूर्वं तदा वाक्यमूचुस्ते तापसा भृशम् । चक्षुःप्राप्त्या महाराज सूचितं शं महीपते ॥३८॥ पुत्रेण च समं योगं प्राप्स्यसे नृपसत्तम ॥ ईश्वर उवाच ॥ यावदेवं वदंत्येते तापसा द्विजसत्तमाः ॥३९॥ सावित्रीसहितः प्राप्तः सत्यवान् द्विजसत्तम । नमस्कृत्य द्विजान्सर्वान्मातरं पितरं तथा ॥१४०॥ सावित्री च ततो ब्रह्मन् ववंदे चरणौ मुदा । श्वश्रूश्वशुरयोस्तां तु पप्रच्छुर्मुनयस्तदा ॥ ४१ ॥

सावित्री सहित सत्यवान् प्राप्त हुआ और हे द्विजसत्तम ! संपूर्ण ब्राह्मणोंको नमस्कार करके माता पिताको नमस्कार करने लगा ॥१४०॥ हे ब्रह्मन् ! उसके अनंतर सावित्री प्रसन्न हुई ब्राह्मणोंको प्रणाम करके सास ससुरके चरणोंको प्रणाम करती भई और उस कालमें मुनि सावित्रीको पूछने लगे ॥ ४१ ॥

मुनि बोले-हे सावित्रि ! हे वरवर्णिनि ! हे शुभानने ! तुम जानती हो इससे कहो कि वृद्ध तुम्हारे ससुरके नेत्र प्राप्त होनेका क्या कारण है ?॥४२॥सावित्री बोली -हे मुनिश्रेष्ठो ! नेत्रप्राप्तिका कारण तो मैं नहीं जानती हूं क्योंकि वहां वनमें मेरे भर्त्ता बहुत देरतक सो गये इससे देर होगई ॥४३॥ सत्यवान् बोले--हे विप्रो ! इस सावित्रीके प्रभावसे नेत्र

मुनय ऊचुः ॥ वद सावित्रि जानासि कारणं वरवर्णिनि । वृद्धस्य चक्षुषःप्राप्ते श्वशुरस्य शुभानने ॥४२॥ सावित्र्युवाच ॥ न जानामि मुनिश्रेष्ठाश्चक्षुषः प्राप्तिकारणम् । चिरं सुप्तस्तु मे भर्ता तेन कालव्यतिक्रमः ॥४३॥ सत्यवानुवाच ॥ अस्याः प्रभावात्संजातं दृश्यते कारणं न च । तत्सर्वं विद्यते विप्राः सावित्र्यास्तपसः फलम्॥४४॥व्रतस्यैव तु माहात्म्यं दृष्टमेतन्मयाऽधुना ॥ ईश्वर उवाच॥एवं तु वदतस्तस्य तदा सत्यवतो मुने॥४५॥

मिले हैं अन्य कारण देखनेमें नहीं आता है क्योंकि जिससे यह संपूर्ण सावित्रीके तपका फल है ॥४४॥ व्रतहीका यह माहात्म्य मैंने देखा है । ईश्वर बोले--हे मुने ! ऐसे उस सत्यवान्के कहते हुए ॥ ४५ ॥
द्युमत्सेनके पुरवासी मनुष्य आये और राजाका हित करने लगे । पुरवासी बोले--हे राजन् ! जिस क्रूरमंत्रीने बलसे राज्य हर लिया था ॥ ४६ ॥ उसको दूसरे आपके अमात्यने मार दिया है हे राजशार्दूल ! हे प्रभो ! हम इसी लिये आये हैं कि उठो चलो और अपने राज्यका पालन करो ॥ ४७ ॥ इंद्रपुरमें मंत्रि पुरोहितोंसे अपने राज्यपर

पौराः समागतास्तस्य ह्याचख्युर्नृपतेर्हितम् ॥ पौरा ऊचुः ॥ येन राज्यं बलाद्राजन् हृतं क्रूरेण मंत्रिणा ॥४६॥ अमात्येन हतः सोऽपि इतीव वयमागताः । उत्तिष्ठ राजशार्दूल स्वं राज्यं पालय प्रभो॥४७॥अभिषिच्यस्व राजेंद्र पुरे मंत्रिपुरोहितैः॥ ईश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलः स्वपुरं जनसंवृतः ॥४८॥ पितृपैतामहं राज्यं संप्राप्य मुदमन्व-गात् । सावित्री सत्यवांश्चैव परां मुदमवापतुः ॥ ४९ ॥

अभिषिक्त होकर राज्य भोगो । ईश्वर बोले--राजशार्दूल द्युमत्सेन यह वार्ता सुनकर मनुष्योंसे युक्त अपने पुरको गया ॥ ४८ ॥ और वहां पिता पितामहोंके राज्यको प्राप्त होकर आनंद भोगने लगा उधर सावित्री सत्यवान् भी परमानंद भोगने लगे ॥ ४९ ॥

उसी व्रतके माहात्म्यसे वह सावित्री बाहुशाली सौ पुत्र जनती भई । और सावित्रीके पिताके भी प्रसन्न हुए यमराजके वरसे सौ पुत्र होते भये। हे ब्रह्मन् ! व्रतका यह संपूर्ण उत्तम माहात्म्य तुझसे कहा है॥१५०॥५१॥ इस व्रतके प्रभावसे क्षीणायु भर्त्ता जी सकता है इस लिये संपूर्ण स्त्रियोंको अवैधव्य फलका देनेवाला यह व्रत अवश्य करना योग्य है॥५२॥

जनयामास पुत्राणां शतं सा बाहुशालिनाम् । व्रतस्यैव तु माहात्म्यात्तस्याः पितुरजायत ॥१५०॥ पुत्राणां च शतं ब्रह्मन् प्रसन्नाच्च यमात्तथा । एतत्ते कथितं सर्वं व्रतमाहात्म्य मुत्तमम् ॥ ५१ ॥ क्षीणायुर्जीवते भर्ता व्रतस्यास्य प्रभावतः । कर्तव्यं सर्वनारीभि रवैधव्यफलप्रदम् ॥५२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ विधानं ब्रूहि देवेश व्रतस्यास्य च त्र्यंबक। क्रियते विधिना केन स्त्रीभिस्त्रिपुरसूदन ॥५३॥ ईश्वर उवाच ॥ वर्षैकं नियमं कृत्वा एकभुक्तेन मानद । नक्ताहारेण वा विप्र भुक्तिं त्यक्त्वा द्विजर्षभ ॥ ५४ ॥

सनत्कुमार बोले -हे देवेश ! हे त्र्यंबक । अब इस व्रतका विधान कहो और हे त्रिपुरसूदन ! यह भी कहो कि स्त्रियोंको किस विधिसे यह व्रत करना चाहिये ॥ ५३ ॥ ईश्वर बोले--हे मानद ! एक वर्षका नियम करके एक वक्त भोजन करना अथवा रात्रिमें भोजन करना। हे प्रिय ! हे द्विजर्षभ ! पश्चात् भोजनको त्यागकर ॥५४॥
तीन दिन लंघन करे पश्चात् चौथे शुभ दिनमें चन्द्रमाको अर्घ्य देकर और सुहागिन ब्राह्मणीका पूजन करे ॥ ५५ ॥ पश्चात् गंध पुष्पसे सावित्री और प्रसावित्रीका पूजन करे। पश्चात् प्रार्थना करे कि मैं सपत्नीक ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन कराकर पश्चात् यथासुख भोजन करूंगी ॥५६॥ हे जगद्धात्रि ! हे शुभे ! मेरे निर्विघ्न करो। ऐसी विधि करके

त्रिदिनं लंघयित्वा च चतुर्थे दिवसे शुभे । चंद्रायार्घ्यं तु दत्त्वा च पूजयित्वा सुवासिनीम् ॥५५॥ सावित्रीं च प्रसावित्रीं गंधपुष्पैः प्रपूज्य च । मिथुनानि यथाशक्त्या भोजयित्वा यथासुखम् ॥५६॥ भोक्ष्येऽहं तु जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे। दिनंदिनं प्रति श्रेष्ठं कुर्यान्न्यग्रोधसेचनम् ॥५७॥ कृत्वा वंशमये पात्रे वालुकाप्रस्थमेव च । सप्तधान्यभृतं पात्रं प्रस्थैकेन द्विजोत्तम ॥५८॥ प्रस्थं द्वात्रिंशकं चैवं स्वर्णढब्बुकनिर्मितम्। कारये न्मुनिशार्दूल वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ५९ ॥

दिन दिनके प्रति अच्छी रीतिसे बडवृक्षका सेचन करे ॥५७॥ पश्चात् हे द्विजोत्तम ! वाँसके-पात्रमें १ सेर बालु रखकर उसपर सप्तधान्यसे पूरित करके पात्र रक्खे ॥ ५८ ॥ पश्चात् ३२ प्रस्थ वा यथाशक्ति सुवर्णकी मूर्त्ति बनवावे और हे मुनिशार्दूल ! दो वस्त्र ओढावे ॥ ५९ ॥

वहां देवी सावित्रीका और ब्रह्माका स्थापन करे और इसी प्रकार सावित्री और सत्यवान्‌की स्वर्णमय शुभ मूर्ति बनवाकर स्थापन करे ॥ १६० ॥ और हे द्विज ! चांदीकी पेटी व कुल्हाडा बनवावे और ऋतुफलोंसे ब्रह्माकी प्रिया जो सावित्री है उसका पूजन करे ॥ ६१ ॥ हरिद्रासे रँगे हुए कंठसूत्रोंसे पूजन करे और सती स्त्रियोंको तीन

तस्योपरि न्यसेद्देवीं सावित्रीं ब्रह्मणा सह । सावित्री सत्यवांश्चैव कार्यौ स्वर्णमयौ शुभौ ॥१६०॥ पेटिकं च कुठारं च कृत्वा रौप्यमयं द्विज । फलैः कालोद्भवैर्देवीं पूजयेद्ब्रह्मणः प्रियाम् ॥६१॥ हरिद्रारंजितैश्चैव कंठसूत्रैः समर्चयेत् । सतीनां कंठसूत्राणि त्रिदिनं प्रति दापयेत् ॥६२॥ पक्वान्नानि च देयानि नित्यमेव द्विजोत्तम । माहात्म्यं चैव सावित्र्याः श्रोतव्यं मुनिसत्तम ॥६३॥ पुराणश्रवणं कार्यं सतीनां चरितं तथा । पूजयेच्च तथा नित्यं मंत्रेणानेन सुव्रत ॥ ६४ ॥

दिन पर्यंत कंठसूत्र प्रदान करे ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! हे मुनिसत्तम ! नित्य ब्राह्मणोंको पक्वान्नदान देवे और सावित्रीका माहात्म्य श्रवण करे ॥ ६३ ॥ हे सुव्रत ! पुराण सुनना चाहिये और सती स्त्रियोंके चरित्र सुनना चाहिये और इस मंत्र करके नित्य पूजन करना चाहिये ॥ ६४ ॥ सावित्री और प्रसावित्री तुम दोनों नित्य ब्रह्माकी प्रिय हो हे देवि ! इसी लिये द्विज और मुनिगण सदा तुम्हारा पूजन करते हैं और हवन करते हैं ॥ ६५ ॥ हे देवि ! हे जगन्मयि ! तीनों संध्याओंमें आप प्राणियोंसे वंदित हो मेरी की हुई इस पूजाको आप ग्रहण करो आपको नमस्कार

सावित्री च प्रसावित्री सततं ब्रह्मणः प्रिया । पूज्यसे हूयसे देवि द्विजैर्मुनिगणैः सदा ॥६५॥ त्रिसंध्यं देवि भूतानां वंदिता त्वं जगन्मयि । मया दत्तामिमां पूजां गृहाण च नमोऽस्तु ते ॥६६॥ सावित्री त्वं प्रसावित्री द्विधाभूताऽसि शोभने । जगत्त्रयं स्थिता देवि त्रिसंध्यं च तथाऽनघे ॥६७॥ श्रेष्ठे देवि त्रिलोके च त्रेताऽग्नौ त्वं महेश्वरि । व्याप्तश्चः सकलो लोकश्चातो मां पाहि सर्वदा ॥ ६८ ॥

है ॥ ६६ ॥ हे देवि ! हे शोभने ! सावित्री और प्रसावित्री ये दो रूप धारण करके हे अनघे ! तुम तीनों लोकोंमें और तीनों संध्याओंमें स्थित हुई हो ॥ ६७ ॥ हे श्रेष्ठे ! हे देवि ! त्रिलोकविषे तुम स्थित हो । हे महेश्वरि ! त्रेताग्निमें तुम स्थित हो सकल लोक आपसे व्याप्त हैं इस लिये संपूर्ण कालमें मेरी रक्षा करो ॥ ६८ ॥

हे शुभे ! हे सावित्री ! संपूर्ण कालमें जन्म जन्मके विषे मुझको रूप यश सौभाग्य पुत्र धन दो ॥ ६९ ॥ हे सुरेश्वरि ! हे महाभागे ! (सावित्री !) आपको भर्तासे वियोग नहीं होता वैसे मेरा भी जन्म जन्मके विषे भर्तासे वियोग मत हो ॥१७०॥ कमलासन विषे स्थित हुई सावित्री देवीका इस प्रकार पूजन करे । हे सत्तम ! इस प्रकार तीन दिन

रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि मे शुभे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वदा जन्मजन्मसु ॥६९॥ यथा ते न वियोगोऽस्ति भर्त्रा सह सुरेश्वरि । तथा मम महाभागे कुरु त्वं जन्म जन्मनि ॥१७०॥ एवं संपूजयेद्देवीं कमलासनसंस्थिताम् । एवं दिनत्रयं नीत्वा चतुर्थेऽहनि सत्तम ॥७१॥ मिथुनानि च संभोज्य षोडशैव द्विजोत्तम । पूजयेद्वस्त्रदानैश्च भूषणाच्छादनासनैः॥७२॥अर्चयित्वा तथाऽऽचार्यं सपत्नीकं सुसंमतम् । तस्मै संकल्पितं सर्वं हेमसावित्रिसंयुतम् ॥ ७३ ॥

पूजित करके पश्चात् चौथे दिन ॥७१॥ सोलह सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर हे द्विजोत्तम ! एक द्विजोत्तमको वस्त्रभूषण आच्छादन आसनसे पूजन करे ॥ ७२ ॥ उसके अनंतर अच्छे मानसे सपत्नीक आचार्यका पूजन करके उसको सुवर्णमयसावित्रीसे युक्त संपूर्ण संकल्पित वस्तु देवे ॥ ७३ ॥ हे सुव्रत ! हे मुने ! सावित्री कल्पको जाननेवाले उस द्विजमुख्यको इस मन्त्रसे देवे ॥७४॥ हे ब्राह्मण ! जो सावित्री जगत्की माता है और जो सावित्री जगत्की पिता हैं वह सावित्री मुझ करके दी हुई आप ग्रहण करो ॥७५॥ और जन्म जन्मके विषे मेरे नित्य अवैधव्य हो और जो

मंत्रेणानेन दातव्यं द्विजमुख्याय सुव्रत । सावित्रीकल्पविदुषे प्रणिपत्य यथा मुने॥७४॥ सावित्री जगतां माता सावित्री जगतः पिताः । मया दत्ता च सावित्री ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम् ॥७५॥ अवैधव्यं च मे नित्यं भूयाज्जन्मनिजन्मनि । मृता च वसते लोके ब्रह्मणः पतिना सह । तत्रैव च चिरं कालं भुङ्क्ते भोगाननुत्तमान्॥१७६॥इति वटसावित्रीव्रतकथा समाप्ता॥

स्त्री इस व्रतको करती है वह मृत्यु होनेपर पति करके सहित ब्रह्माके लोकमें वसती है और वहीं स्थित हुई बहुत कालपर्यंत उत्तम भोगोंको भोगती है ॥ १७६ ॥ इति वटसावित्रीव्रतकथा--भाषाटीकासहिता समाप्ता ॥ श्रीरस्तु ॥

इति

❋ तुलसीत्रिरात्रव्रतकथा भाषाटीकासहिता ❋

समाप्ता ।

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर
मुंबई - ४०० ००४
दूरभाष / फैक्स -०२२-२३८५७४५६

खेमराज श्रीकृष्णदास,
२२, चिंतामणी इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
रामटेकडी, पुणे- ४११०१३
दूरभाष - ०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक् डिपो
श्री लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र-४२१३०१
दूरभाष- ०५४२-२४२००७८

खेमराज श्रीकृष्णदास,
चौक, वाराणसी (उ.प्र) २२१००१
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS